卐 श्रीनेमि–लावण्य–दक्ष–सुशील ग्रन्थमाला रत्न ६८वां 卐

।। देवाधिदेवश्रीजिनेन्द्राय नमो नमः ।।

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितं

श्रीमहादेवस्तोत्रम्

* तस्योपरि *

जैनधर्मदिवाकर - शासनरत्न - तीर्थप्रभावक-

राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक-

शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण

आचार्य श्रीमद् विजयसुशीलसूरिणा

विरचिता '**मनोहरा टीका**'

[हिन्दीपद्यानुवाद - भाषानुवादसहिता]

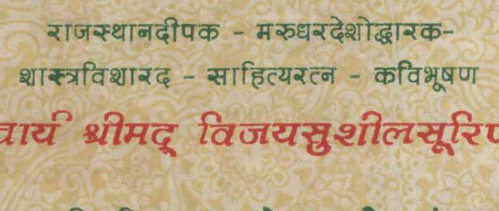

* प्रकाशकम् *

आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिरम्

शान्तिनगर – सिरोही (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐 श्रीनेमि – लावण्य – दक्ष – सुशील ग्रन्थमाला रत्न ६८वां 卐

।। देवाधिदेवश्रीजिनेन्द्राय नमो नमः ।।

卐 卐

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितं

卐 श्रीमहादेवस्तोत्रम् 卐

— तस्योपरि —

शासनसम्राट् – सूरिचक्रचक्रवर्त्ति – तपोगच्छाधिपति – महाप्रभावशालि – अखण्डब्रह्मतेजोमूर्त्ति – श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेकतीर्थोद्धारक – परमपूज्य आचार्य महाराजाधिराज ***श्रीमद् विजयनेमि सूरीश्वराणां*** पट्टालंकार – साहित्यसम्राट् – व्याकरणवाचस्पति – शास्त्रविशारद – कविरत्न-परमपूज्याचार्यप्रवर ***श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वराणां*** पट्टधर – धर्मप्रभावक – शास्त्रविशारद–व्याकरणरत्न – कविदिवाकर – परमपूज्याचार्यवर्य ***श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वराणां*** पट्टधर – पूज्यपाद आचार्यदेव ***श्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा*** विरचिता

'मनोहरा टीका' [हिन्दीपद्यानुवाद-भाषानुवाद सहिता]

卐 प्रकाशक 卐

*** आचार्यश्री सुशीलसूरि जैन ज्ञान मन्दिर ***

शान्तिनगर-सिरोही, राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

※ सदुपदेशक ※		※ सम्पादक ※
शासनरत्न - तीर्थप्रभावक - सूरिमन्त्रसमाराधक परम-पूज्याचार्यदेव **श्रीमद्विजय-सुशीलसूरीश्वरजीम. सा.** के पट्टधर-शिष्यरत्न **पूज्य उपाध्यायजी महाराज श्रीविनोदविजयजी गणिवर्य**	卐 卐 卐	शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न कविभूषण - परमपूज्य आचार्यदेव **श्रीमद् विजय-सुशील सूरीश्वरजी म. सा.** के विद्वान् शिष्यरत्न **पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तमविजयजी महाराज**

श्री वीर सं. २५११ विक्रम सं. २०४१ नेमि सं. ३६

प्रतियाँ—१००० प्रथमावृत्ति मूल्य—सदुपयोग

— सप्रेम भेंट —

जैन धर्मदिवाकर-राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक पूज्यपाद आचार्य-देव **श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा.** के पट्टधर—शिष्य-रत्न पूज्य वाचक **श्री विनोदविजयजी गणिवर्य म. सा.** के सदुपदेश से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में द्रव्यसहायक तखतगढ़ निवासी संघवी **श्री देवीचन्दजी श्रीचन्दजी** की ओर से सादर सप्रेम भेंट।

प्रकाशक :		मुद्रक :
आचार्य श्रीसुशीलसूरि जैन ज्ञानमन्दिर शान्तिनगर—सिरोही राजस्थान	卐 卐 卐	हिन्दुस्तान प्रिण्टर्स जोधपुर.

※ द्रव्यसहायक—संघवी श्रीदेवीचन्दजी श्रीचन्दजी, तखतगढ़ ※

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

विश्व के महान् संतपुरुष, भारतदेश के संसारत्यागी साधु-महात्मा, जैनधर्म (जैनशासन) के महान् आचार्य, शासनसम्राट् के सुप्रसिद्ध पट्टालंकार, गुजरात-सौराष्ट्र के शृंगार, बोटादनगर के अनुपम दिव्यरत्न, सप्तलक्षाधिकश्लोकप्रमाण नूतन संस्कृत-साहित्य के असाधारण सर्जक, श्री सिद्धहेमबृहन्न्यासानुसन्धानकारक, श्री धातुरत्नाकराद्यनेक ग्रन्थ-प्रणेता, सच्चारित्र चूडामणि, विशुद्ध बालब्रह्मचारी, विद्यमान पैंतालीस आगमसूत्र के विधिपूर्वक योगोद्वहन तथा वांचन करने वाले महायोगी, निरुपम-व्याख्यानामृतवर्षी, प्रशान्तमूर्ति, संस्कृतादि भाषाओं में साक्षरों के साथ शास्त्रार्थ करने वाले, जैन-शासन की अनुपम प्रभावना करने वाले, आजानु लम्बायमान हस्तद्वयवाले, 'साहित्यसम्राट्-व्याकरण-वाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न' पद से समलंकृत महासमर्थ विद्वद्वर्य, सदास्मरणीय, भवोदधितारक, परमपूज्य-परमोपकारी-गुरुदेव-स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वरजी महाराज सा. को—मुझ पर किये हुए असीम उपकार की स्मृति स्वरूप यह 'श्रीमहादेवस्तोत्रम्' (मनोहरा टीका, हिन्दीपद्यानुवाद-भाषानुवाद सहिता) ग्रन्थरत्न सादर समर्पित करता हुआ अत्यन्त आनन्दित होता हूँ।

आपका

प्रशिष्य

विजयसुशीलसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाती स्तवन

उठो नी मोरा आतम रामा,
जिन मुख जोवा जइयो रे ।। टेर ।।

जिणजीको दर्शन छे अति दोहिलो,
ते किम सोहिलो जाणो रे ।
वार-वार मानव भव मिलनो,
मिलनो मुश्किल ठाणो रे ।। १ ।।

चार दिनां नो चटको-मटको,
देखीने मत राचो रे ।
विणसता वार लागे नहीं,
काया घट छे काचो रे ।। २ ।।

अनन्त गुणे करि भरियो जिनवर,
पूरव पुण्ये पायो रे ।
ते देखिने मनमां हर्ष,
घणो घणो चित्त समायो रे ।। ३ ।।

हीरो हाथ अमोलक आयो,
मूढ़पणे मत खोवो रे ।
सहज सनूरा पार्श्व जिणंदसु,
राजी थई चित रमज्यो रे ।। ४ ।।

मन गमता मोरा आतम रामा,
कीजे सुकृत कमाई रे ।
लाभ उदय जिन चन्द लहीने,
वर्त्ते सिद्ध बधाई रे ।। ५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Serving JinShasan
077634
gyanmandir@kobatirth.org

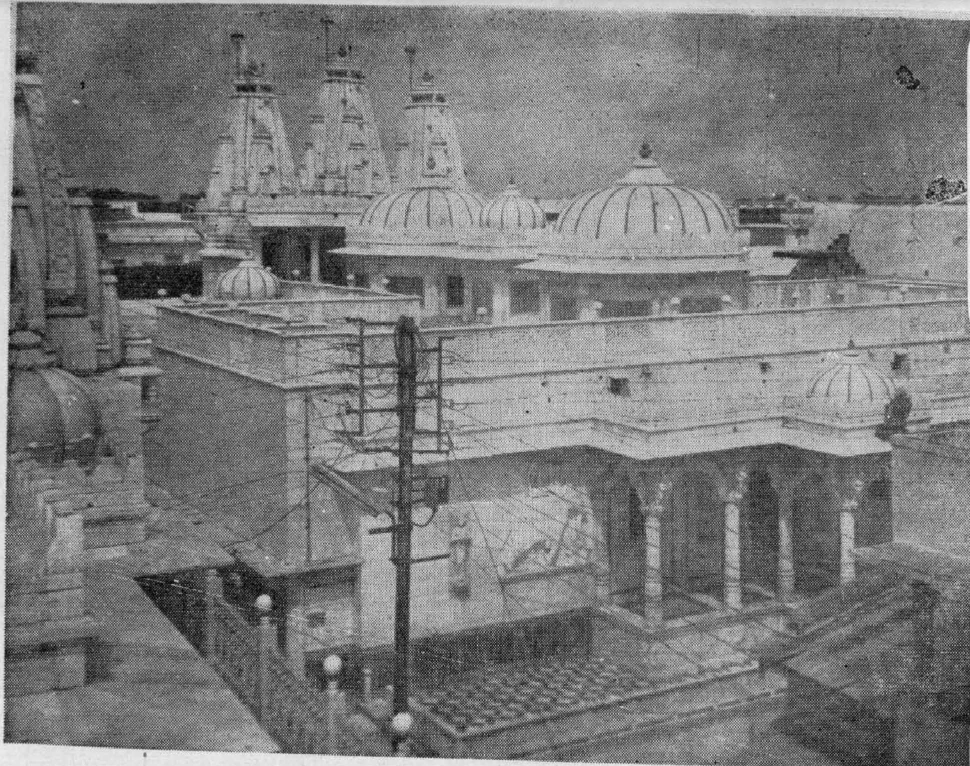

गगनचुम्बी-विशालकाय-भव्यातिभव्य श्री आदिनाथ जिन प्रासाद, तखतगढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

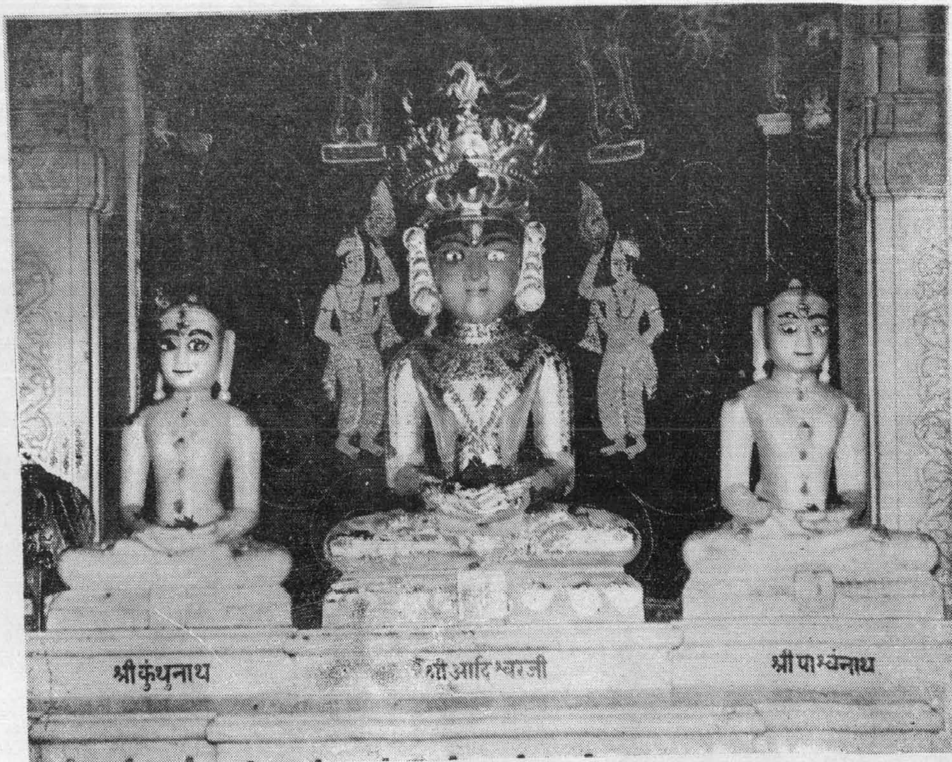

युगादिदेव–नाभिनन्दन–अनन्तानन्तउपकारी श्री आदिनाथ–ऋषभदेव भगवान
भाव भरी कोटिश: वन्दना हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयनाभिरम्य-विशालकाय-भव्यातिभव्य श्री ऋषभदेव जिन मन्दिर, तखतगढ़

३ (५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्ववन्द्य-विश्वविभु-प्रथम तीर्थंकर

श्री आदिनाथ - ऋषभदेव भगवान

भाव भरी कोटिशः वन्दना हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

जिसने रागद्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।।

—युगवीर

जैनधर्म की ईश्वर सम्बन्धी परिकल्पना प्रचलित मान्यता से सर्वथा भिन्न है। ईश्वर, महेश्वर, परमेश्वर आदि शब्दों का श्रवण करने पर सामान्यत: जो छवि उभरती है वह किसी ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वशक्तिमान्, सर्वोच्च अधिकारी, कर्ता-धर्ता की ही होती है, जो अनादिकाल से संसार से सर्वथा असम्पृक्त है। सांसारिक बन्धनों और कर्मों तथा वासनाओं को निर्मूल कर देने पर उसे ईश्वरत्व उपलब्ध नहीं हुआ है अपितु वह तो सदा से ही इन सब बन्धनों से सर्वथा मुक्त है अत: वह सबसे महान् है, सबका ज्ञाता है, सृष्टि का निर्माता होने के कारण अनादि है किन्तु जैन धर्म ऐसे किसी अनादिसिद्ध ईश्वर की सत्ता से सर्वथा इन्कार करता है और अवतारवाद में तो उसका कतई विश्वास नहीं है।

जैन मान्यता के अनुसार यदि ईश्वर है तो वह एक नहीं बल्कि अनन्त हैं और आगे भी अनन्तकाल तक होते रहेंगे क्योंकि जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आत्मा की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह मुक्त हो सकता है। आज तक ऐसे अनन्त आत्मा मुक्त हो चुके हैं और आगे भी होंगे। ये मुक्त जीव ही, ये सिद्ध जीव ही जैनधर्म में ईश्वर हैं। जैन दार्शनिकों ने इन मुक्तात्माओं को ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति आदि अनन्त गुणों का **पुञ्ज** परम+आत्मा स्वीकार किया है। इस मौलिक विचार स्वातन्त्र्य के कारण ही वैदिक दार्शनिकों ने षट्दर्शनों की सूची में जैनदर्शन को स्थान ही नहीं दिया और इसे नास्तिक दर्शन भी घोषित कर दिया।

जैनदर्शन के ईश्वरवाद की महत्ता को स्वीकार करते हुए एक उदारचेता विद्वान् ने कहा है कि—"यदि एक ईश्वर मानने के कारण किसी दर्शन को आस्तिक संज्ञा दी जा सकती है तो अनन्त आत्माओं के लिये मुक्ति का द्वार उन्मुक्त करने वाले जैनदर्शन में अनन्तगुणी आस्तिकता स्वीकार करना न्यायसंगत होगा।"

जैनधर्मानुसार अनादिकाल से कर्मबन्धन के कारण जीव अज्ञानी और अल्पज्ञ बना हुआ है। ज्ञानावरणीयादि कर्मों ने उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों को ढक रखा है। आवरणों से मुक्त होने पर यह जीव ज्ञानादि का अधिकारी होता है। जो-जो आत्माएँ कर्मबन्धन को छेदकर मुक्त हुई हैं, वे सब सर्वज्ञ हैं तथा जो कोई सर्वज्ञ होता है वह कर्मबन्धन को काटकर ही सर्वज्ञ हो सकता है, उसके बिना कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता अतः **कोई जीव अनादि सिद्ध नहीं है।**

जैन सिद्धान्त क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, भय, विस्मय आदि विकारों से रहित वीतराग, सर्वज्ञ, परम+आत्मा को ईश्वर मानता है। ऐसा ईश्वर विश्व को लीला में किसी प्रकार का भाग नहीं लेता है। वह तो सब प्रकार की इच्छाओं से रहित हुआ कृतकृत्य है। आत्मा की दृष्टि से संसारी और मुक्तात्मा में कोई अन्तर नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि हममें वे सारी दैवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्तियाँ प्रसुप्तावस्था में हैं और उनमें उन शक्तियों का पूर्ण विकास हो चुका है। बॅरिस्टर चम्पतराय जैन ने अपने ग्रन्थ Key of Knowledge में लिखा है—Man-Passions = God; God + Passions = Man. जैनधर्म ने ईश्वर का पद किसी एक व्यक्ति विशेष के लिए सर्वदा सुरक्षित नहीं रखा है। अनन्त आत्माओं ने स्वयं को पूर्णतया विकसित करके परमात्म-पद-महादेवत्व प्राप्त किया है और भविष्य में भी करती रहेंगी।

अनन्त गुणों की धनी वह आत्मा कर्मों से सर्वथा मुक्त होने के कारण फिर कभी संसार-चक्र में परिभ्रमण कर जन्म-जरा-मरण की यंत्रणा नहीं उठाती। उस वीतराग, वीतद्वेष, मोहविहीन, निर्भीक, प्रशान्त परमात्मा का विश्व के सुख-दुःख-दान में हस्तक्षेप स्वीकार करने पर वह भी राग-द्वेष मोहादि दुर्बलताओं से पराभूत हो जायेगा, साधारण प्राणियों की श्रेणी में आ जायेगा—तब उसका महादेवत्व कैसे बन सकेगा?

वेदव्यास की गीता के प्रधान पुरुष श्री कृष्णचन्द्र की वाणी से भी यही सत्य प्रकट होता है कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं, स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं, न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

—गीता ५/१४-१५

जैन सिद्धान्त के अनुसार चार घातिकर्मों–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—को दग्ध करके यह जीव केवलज्ञान प्राप्त कर सर्वज्ञ या केवली हो जाता है। अब उसका ज्ञान और दर्शन आत्मा के सिवा अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखता अतः वह **केवली** कहा जाता है। उसे **जीवन्मुक्त** भी कहा जा सकता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि यद्यपि अभी वह सशरीर(**सकल परमात्मा**)है किन्तु घातिकर्मों का नाश हो जाने के कारण मुक्तात्मा के समान ही है। इन कर्मों का नाश करने के कारण उसे (अरि-रज-रहस विहीन) **अरिहन्त** भी कहते हैं, क्योंकि उसने राग, द्वेष, कषाय तथा कर्म रूपी शत्रुओं को जीत लिया है अतः उसे **जिन** भी कहते हैं।

केवली जिन दो प्रकार के हैं (१) सामान्य केवली और (२) तीर्थङ्कर केवली। सामान्य केवली अपनी ही मुक्ति की साधना करते हैं किन्तु तीर्थङ्कर केवली अपनी मुक्ति की साधना के बाद संसार के जीवों को भी समस्त दुःखों से छूटने का उपाय बताते हैं। इनके उपदेश से अनेक संसारी जीव संसार रूपी समुद्र से पार उतर जाते हैं, तिर जाते हैं। इसलिए ये तीर्थ स्वरूप या **तीर्थङ्कर** कहे जाते हैं। ये तीर्थङ्कर कभी किसी परमात्मा के अवतार रूप नहीं होते बल्कि संसार के जीवों में से ही कोई जीव प्रयत्न करते-करते लोककल्याण की भावना से तीर्थङ्कर पद प्राप्त करता है। तीर्थङ्कर पद प्राप्त करने वाले जीव के माता के गर्भ में आने पर माता को शुभ स्वप्न दिखाई देते हैं। तीर्थंकरों के पंचकल्याणक—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण—होते हैं जिनमें इन्द्रादिक भी सम्मिलित होते हैं। इस पंचकल्याणक रूप महापूजा के कारण तीर्थंकर को **अर्हत्** भी कहा जाता है।

तीर्थङ्कर अनन्त चतुष्टय (दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य) के अधिपति होते हैं। ये साक्षात् भगवान या ईश्वर होते हैं। जैन वाङ्मय में इनके ऐश्वर्य का विपुल वर्णन है। ये जन्म से ही चार ज्ञान के धारी होते हैं। केवलज्ञान हो जाने के बाद इनका उपदेश सुनने के लिए धर्मसभा जुड़ती है जिसमें पशु-पक्षी तक सम्मिलित होते हैं। यह धर्मसभा—**समवसरण** कहलाती है जिसका अर्थ होता है—समान रूप से सबका शरणभूत। केवलज्ञान उपलब्ध होने के बाद से ये अपना शेष जीवन लोक के जीवों का उद्धार करने में ही बिताते हैं—इसी से नमस्कार मंत्र में इनको प्रथम स्थान दिया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । **णमो अरहंताणं**/अरहन्तों को नमस्कार हो ।

जब अरिहन्तों की आयु थोड़ी ही बाकी रह जाती है तब ये योगनिरोध कर शेष चार अघाति कर्मों (वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र) का भी क्षय कर देते हैं और सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण इनकी शुद्ध आत्मा लोक के ऊपर अग्रभाग में जाकर ठहर जाती है । सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाने के बाद मुक्तदशा में केवलियों में किसी तरह का अन्तर नहीं होता यद्यपि संसार दशा में सामान्य केवली की अपेक्षा तीर्थंकर अधिक पूज्य होते हैं । मुक्त जीव सिद्ध कहलाते हैं । **णमो सिद्धाणं**/सिद्धों को नमस्कार हो ।

इस प्रकार जैन दृष्टि से अर्हन्त पद और सिद्ध पद प्राप्त जीव ही ईश्वर, देव या महादेव कहलाते हैं । वास्तव में महान् देव तो ये ही हैं, नामधारी नहीं । इनका संसार से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता । इसकी रचना करना, इसका पालन-पोषण करना, इसे नष्ट करना जैसे किसी काम में इनका कोई हाथ नहीं होता । न ये किसी का भला-बुरा करते हैं, न किसी को कोई दण्ड देते हैं । न स्तुति से प्रसन्न होते हैं, न निन्दा से अप्रसन्न ! आत्मवैभव के अतिरिक्त इनके पास अन्य कुछ भी नहीं होता । जैन सिद्धान्त के अनुसार **सृष्टि स्वयं-सिद्ध है** । जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार स्वयं ही सुख-दुःख पाते हैं ।

महादेवस्तोत्रम् प्रसिद्ध जैनाचार्य कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य की मधुर ललित रचना है । प्रसिद्धि है कि इस स्तोत्र का प्रणयन उन्होंने गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर में बैठ कर किया था । आचार्यश्री ने कुल ४४ श्लोकों में बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से यह स्थापित किया है कि सच्चे महादेव तो जिन ही हैं, अन्य तो मात्र नाम से हैं । महादेव या महान् देव में पाये जाने वाले समस्त गुण जिनेन्द्र भगवान में ही देखे जा सकते हैं अन्य किसी में नहीं अतः **'महादेवः स उच्यते''**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहना बिल्कुल सार्थक और समीचीन है। प्रारम्भ में १९ श्लोकों में गुणों के आधार पर आचार्यश्री ने सिद्ध किया है कि शिव, शंकर, महेश्वर, स्वयम्भू, परमात्मा, महादेव जिन ही हैं। एक मूर्ति के तीन भाग रूप कथन भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र से युक्त होने वाले जिन पर ही घटित होता है। आचार्यश्री ने अनेक तर्क देकर लगभग तेरह श्लोकों में यह सिद्ध किया है कि —**"परस्परविभिन्नानां एकमूर्तिः कथं भवेत्"** (२१)। चार श्लोकों (३४-३७) में आचार्यश्री ने वीतरागभगवन्त में आठ गुण स्वीकार किये हैं और ३८ वें श्लोक में यह घोषित किया है कि मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले जीव को पुण्य और पाप से मुक्त; राग और द्वेष से रहित ऐसे अर्हन् वीतराग जिनेश्वर देव को ही नमस्कार-प्रणाम करना चाहिए। ३९ वें श्लोक में **'अर्हं'** शब्द में ब्रह्मा-विष्णु-महेश के स्वरूप की परिकल्पना की है। ४० से ४३ तक श्लोकों में 'अर्हन्' शब्द के प्रत्येक वर्ण की सुन्दर व्याख्या आचार्यश्री ने की है और अन्त में गुणों के उपासक आचार्यश्री पक्षपात को छोड़ कर यह घोषित करते हैं कि—

भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपगता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

मुझे नाम से कोई प्रयोजन नहीं, जिसने रागद्वेष का क्षय कर दिया वही मेरे लिए वन्दनीय और नमस्करणीय है।

अनुष्टुप् वृत्त में लिखा गया यह लघु स्तोत्र शान्त रस और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। पाठक को पढ़ते ही अर्थ की प्रतीति आसानी से हो जाती है। प्रस्तुत संस्करण आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी की मनोहरा नामक संस्कृत टीका, हिन्दी पद्यानुवाद तथा हिन्दी गद्यानुवाद सहित प्रकाशित किया जा रहा है। यह संस्कृत टीका पूज्यश्री ने प्राध्यापक श्री जवाहरचन्द्र पटनी के अनुरोध पर लिखा है। टीका भी बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण है। प्रत्येक श्लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

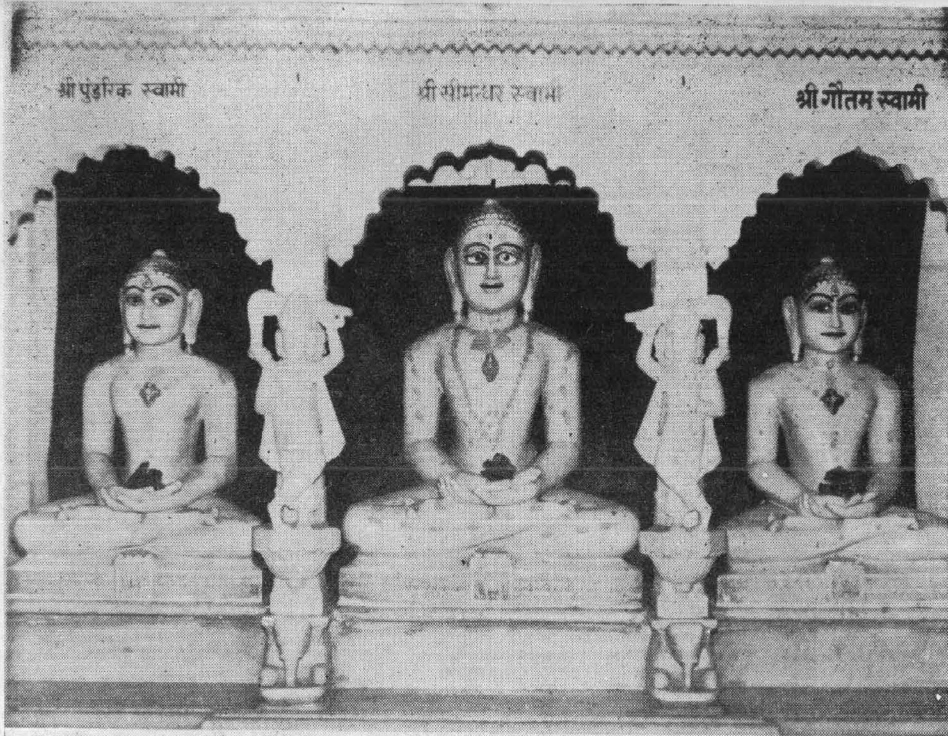

श्री आदीश्वर जिनमन्दिर में इन तीनों मूर्तियों की अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद् विजयसुशीलसूरीश्वरजी म. सा. के वरदहस्ते शासनप्रभावना पूर्वक हुई है। [वि.सं. २०४०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ऋषभदेव भगवान की चरण-पादुकायुक्त ध्यानस्थ

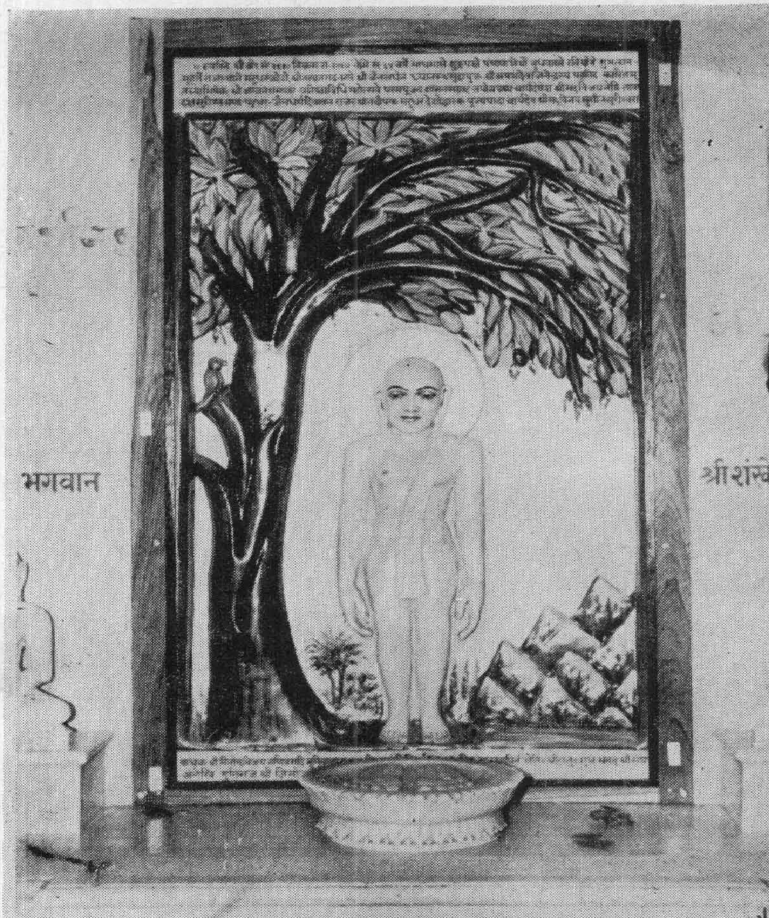

श्री ऋषभदेव भगवान का पट्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्त्ति-तपोगच्छाधिपति-
भारतीय भव्यविभूति-ब्रह्मतेजोमूर्ति-महाप्रभावशाली

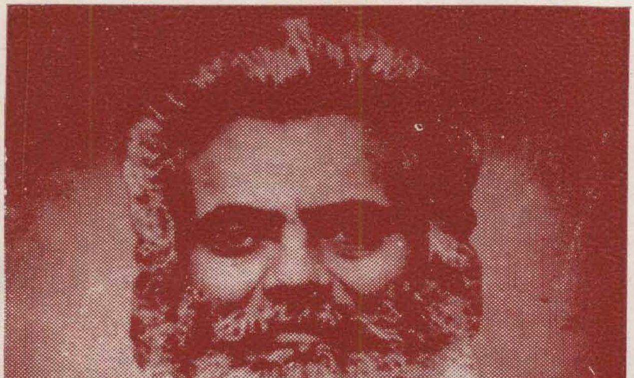

स्वर्गीय परमपूज्याचार्य महाराजाधिराज
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी म० सा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमशासनप्रभावक-साहित्यसम्राट् व्याकरणवाचस्पति
शास्त्रविशारद-बालब्रह्मचारी-कविरत्न

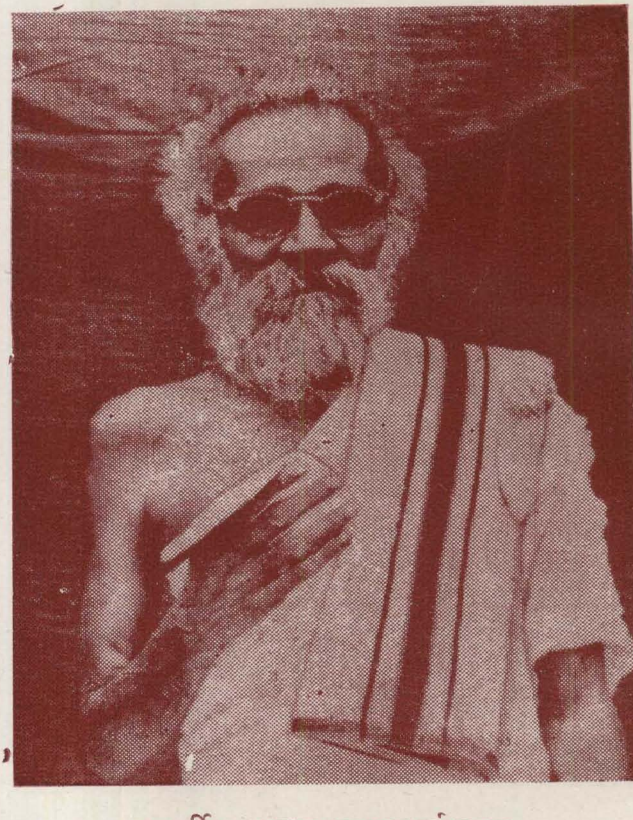

स्वर्गीय परमपूज्याचार्यप्रवर

श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मप्रभावक-व्याकरणरत्न-शास्त्रविशारद
कविदिवाकर-देशनादक्ष-बालब्रह्मचारी

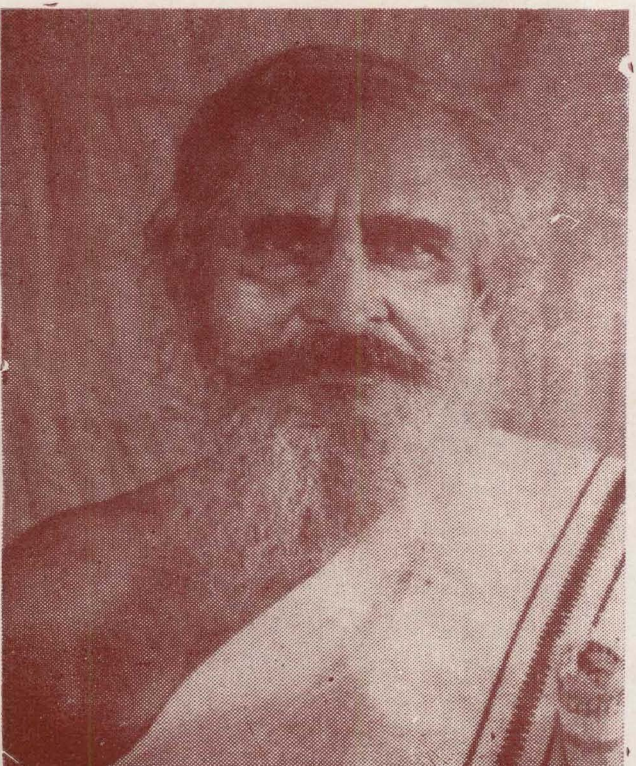

परमपूज्य आचार्यदेव
श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थान-
दीपक मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न
कविभूषण-बालब्रह्मचारी

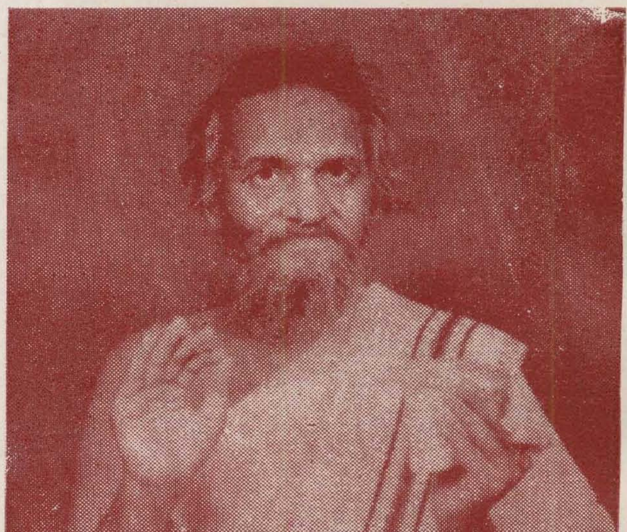

परमपूज्याचार्यदेव

श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तखतगढ़ निवासी दानवीर, धर्मप्रेमी, श्रेष्ठिवर्य

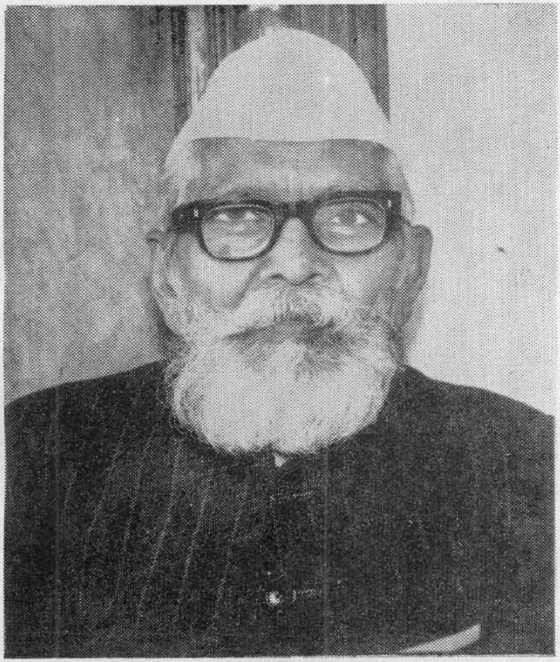

संघवी श्री देवीचन्दजी श्रीचन्दजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघवी श्री देवीचन्दजी की धर्मपत्नी

अखण्ड सौभाग्यवती

श्रीमती हुलासी बेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अधिकाधिक बोधगम्य बनाने का पूर्ण प्रयत्न लेखक ने किया है। प्रत्येक श्लोक की व्याख्या का क्रम इस प्रकार है—अवतरणिका/मूल पद्य/अन्वय/मनोहरा (संस्कृत) टीका/हिन्दी पद्यानुवाद/शब्दार्थ/श्लोकार्थ और भावार्थ। आचार्यश्री की लेखनी ने मूल रचना के मन्तव्य को बहुत ही स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। मैं इस सुन्दर टीका के लिए आचार्यश्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। ग्रन्थ के अन्त में आचार्यश्री द्वारा विरचित 'श्रीमहादेवस्तुत्यष्टकम्' भी मुद्रित है। यह भी बड़ा सरल और सुबोध है। शब्दचयन बहुत उत्तम है। आचार्य श्री अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी सन्त हैं। हिन्दी, संस्कृत और गुजराती में आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। मैं सरस्वती के इस वरदपुत्र के दीर्घ और नीरोग जीवन की कामना करता हूँ और अपेक्षा करता हूँ कि आपको लेखनी इसी प्रकार जिनवाणी के मर्म को प्रकाशित करती रहेगी। पुस्तक-प्रकाशन में सहयोग करने वाले सभी हार्दिक साधुवादार्ह हैं। अन्त में—

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्,
साक्षात् येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुलि।
रागद्वेषभयामयान्तक जरा लोलत्व लोभादयो,
नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते॥

इति शुभम्॥

वसन्त पञ्चमी
२६-१-८५

—डा. चेतनप्रकाश पाटनी
जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघवी श्रीमान् देवीचन्दजी श्रीचन्दजी

का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

आपका जन्म वि. सं. १९६३ भाद्रपद कृष्णा ३, मंगलवार को पादरली (राजस्थान) में प्राग्वट कुल के भाणसका परमार (गोड़ीया) गोत्र में हुआ। आपके पिता शा श्रीचंदजी रतनाजी एवं माता सौ. कुसुम बाई धार्मिक संस्कार से विभूषित थे। आपकी धर्मपत्नी हुलासी बाई का जन्म वि. सं. १९६५ में तखतगढ़ में हुआ। हुलासी बाई के पिताजी शा भकाजी उर्फ प्रागचंदजी एवं माताजी केशरबाई अतीव धर्मनिष्ठ थे।

संघवी देवीचन्दजी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सदा अग्रणी रहते हैं। इनकी धर्मपत्नी हुलासी बाई का धार्मिक अभ्यास दो प्रतिक्रमण तक हुआ है। इन्होंने ज्ञान पंचमी, मेरु तेरस, वीसस्थानक तप, तीन उपधान की आराधना, पौषदशमी, नवपद ओलीजी आदि की तपश्चर्या हर्षोल्लास से की है। आपको तपस्या अनुमोदनीय है। संघवी देवीचन्दजी ने पंचप्रतिक्रमण, नवस्मरण, जीवविचार, लघुसंग्रहणी आदि का अभ्यास किया है। जीवन में धर्म के प्रभाव से मानवीय गुणों का विकास होता है। धार्मिक अभ्यास माता के दूध के समान आत्मा का पोषण करता है, व्यावहारिक ज्ञान सांसारिक कार्यकलाप का सुचारु रूप से संचालन करता है। धर्ममय व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण बनता है।

श्रीमान् संघवी देवीचन्दजी ने तपश्चर्या के अन्तर्गत ज्ञानपंचमी, अट्ठाई, नवपदजी ओली, संवत् १९९४ से संवत् २००५ तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायम एकासणा, कायम चौविहार तथा गरम पानी सेवन; संवत् २०१५ में कोलेरा की बीमारी में तथा स. २०२४ में हार्टअटेक की बीमारी में भी चौविहार तथा गरम पानी का सेवन किया। तप से कर्मनिर्जरा होती है। आपके तप-पालन की दृढ़ता प्रशंसनीय है। आपने श्रीवर्धमान तप की ओली तथा श्री उपधान तप की आराधना प. पू. आचार्यदेव श्री भुवन भानुसूरीश्वरजी म. सा. की निश्रा में की।

तीर्थयात्रा—मनुष्य जन्म के आठ विशिष्ट फलों में तीर्थयात्रा का स्पष्ट निर्देश है:

पूज्यपूजा दयादानं, तीर्थयात्रा जपस्तपः।
श्रुतं परोपकारश्च, मर्त्यजन्मफलाष्टकम्॥

[पूज्यों की पूजा, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप, तप, श्रुताराधना एवं परोपकार–मनुष्य जन्म के ये आठ फल हैं।]

तीर्थ में परिभ्रमण करने वाले मनुष्य संसार में आवागमन नहीं करते—

तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।

तीर्थयात्रा में धन खर्च करने वाले मनुष्य स्थिर सम्पत्तिवान होते हैं—

द्रव्यव्ययादिह नराः स्थिरसम्पदः स्युः।

संघवी देवीचन्दजी ने श्री शत्रुञ्जय, गिरनारजी, आबूजी, सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थों की अनेक बार यात्रा की है। श्री शिखरजी तथा पावापुरीजी की २५ से भी अधिक यात्रायें करके विपुल पुण्योपार्जन किया है। श्री पावापुरी में निर्वाण कल्याणक (दीपावली) के दिन इनकी ओर से पूजा, अंगरचना, प्रभावना सं.२०१३ से प्रतिवर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चालू है। इसके लिए इन्होंने पुष्कल धनराशि अर्पित की है-और उस रकम के ब्याज से ये मांगलिक कार्य सम्पन्न होते हैं।

मांगलिक कार्य—संघवीजी ने निम्नलिखित मांगलिक कार्य उल्लासपूर्वक सम्पन्न किये हैं :

१. सं. १९९७ में कोल्हापुर में श्री सम्भवनाथ भगवान की प्रतिमाजी भरा कर अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा करवाई। यह प्रतिमाजी श्री बीजापुर मन्दिर में विराजमान है।

२. सं.२०१९ में पादरली में श्री वीस स्थानक तप, श्री नवपदजी ओली, ज्ञानपंचमी तथा पौषदशमी की पूर्णाहुति निमित्त श्री पांच छोड़ का उद्यापन, अट्ठाई महोत्सव, शान्तिस्नात्र वैशाख सुद ३ को आयोजित किया।

३. सं. २०२३ में पादरली में अपने आवासीय गृह को सुन्दर उपाश्रय रूप में बनवाकर श्री पादरली संघ को अर्पित किया।

४. आपने वि. सं. २०३२ ता. ८-३-७६ से २५-३-७६ तक १८ दिवसीय छ'री पालित पैदल यात्रा-संघ तखतगढ़ से श्री आबू अचलगढ़ तीर्थ का प. पू. तपस्वी मुनिराज श्री जितेन्द्र विजयजी म. सा. की निश्रा में निकाला।

५. छ'री पालित संघ दूसरा-सं. २०३८ ता. ८-३-८१ से २६-३-८१ तक १९ दिवस का श्री दयालशाह के किले से घाणेराव-मुछाला महावीरजी, राणकपुरजी, राता महावीरजी, नाणा, बामणवाड़जी, नांदिया, लोटाणा का पूज्य तपस्वी मुनिराज श्री जितेन्द्र विजयजी गणिवर्य की निश्रा में निकाला। तीर्थमाला श्री दीयाणा तीर्थ में पहनी।

६. संवत् २०३९, ता. १५-१-८२ से ३-३-८२ एक महीना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ दिन का श्री शत्रुंजय महातीर्थ का छ'री पालित यात्रा संघ १८ संघवियों के साथ प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. की पावन निश्रा में निकाला।

७. सं. २०३९, फाल्गुरण कृष्णा ६ को तखतगढ़ मंगल भवन के नूतन मन्दिर की प्रतिष्ठा पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. की निश्रा में भव्य महोत्सव पूर्वक सम्पन्न हुई--उस प्रतिष्ठा में शिखर पर कलश चढ़ाकर आपने महा-पुण्यार्जन किया।

८. सं. २०३९, माघ मास में श्री दयालशाह किले में मुनिराज श्री जितेन्द्र विजयजी गरिणवर्य की निश्रा में उपधान तप की आराधना करवायी तथा माला-प्रसंग पर अट्ठाई महोत्सव एवं श्री भक्तामर महापूजन करवाया।

९. सं. २०४०, महासुद ६ को तखतगढ़ में अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. की निश्रा में अत्यन्त समारोहपूर्ण सम्पन्न हुई। उस महोत्सव में आपकी ओर से नवकारशी तथा श्री भक्तामर महापूजन हुए एवं महासुद ६ के दिन श्री सीमंधर स्वामी मूलनायक भगवान को सुन्दर बोली बोलकर विराजमान किये।

१०. बम्बई की बाणगंगा विमल सोसायटी में साधु-साध्वीजी की पाठशाला का उद्घाटन आपके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। उस अवसर पर आपने अच्छी रकम अर्पित की।

११. तखतगढ़ मंगल भवन पालीताणा में साधु-साध्वीजी के लिए एक कमरा लिखवाकर लाभ लिया।

१२. पादरली भवन-पालीताणा में एक कमरा साधु-साध्वीजी के लिए लिखवाकर लाभ लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. श्री पावापुरी समवसरण धर्मशाला में यात्रियों के लिए एक कमरा लिखवाया।

१४. अचलगढ़ में यात्रियों तथा ज्ञानशिविर के विद्यार्थियों के लिए एक कमरा लिखवाकर पुण्योपार्जन किया।

१५. श्री पावापुरी जीर्णोद्धार में अच्छी रकम प्रदान की।

१६. श्री पावापुरी भोजनशाला के मकान में अच्छी रकम अर्पित की।

१७. संवत् २०३८ में पू. मुनिराज श्री जितेन्द्र विजयजी म. सा. के गणिपद महोत्सव प्रसंग पर आपने लक्ष्मी का सद्व्यय किया तथा २०४१ में अहमदाबाद में मुनिराज श्री गुणरत्न विजयजी म. सा. के गणिपद महोत्सव प्रसंग पर आपने सार्धमिक भक्ति एवं भक्तामर महापूजन का लाभ लिया।

१८. भरुच में आपने जीर्णोद्धार हेतु अच्छी रकम प्रदान की।

१९. वापी जिनालय का परिकर निर्माण करवाने के लिए आपने आदेश लिया।

२०. कलकत्ता शहर में मन्दिर-धर्मशाला के नूतन निर्माण में आपने सद्व्यय करके उत्तम लाभ लिया।

२१. कलकत्ता नगर में आत्मसमाधि निमित्त दशाह्निका महोत्सव आयोजित करके दो दिन श्री भक्तामर महापूजन का अत्यन्त समारोहपूर्वक महोत्सव किया।

२२. सं. २०४० में तखतगढ़ में मुमुक्षु श्री महेन्द्रकुमार तथा राजेशकुमार का वर्षीदान का वरघोड़ा आपकी ओर से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकला तथा दीक्षा के निमित्त घर के बाहर मंडप आदि की सुन्दर सजावट आपकी ओर से की गई।

२३. फालना में भोजनशाला के लिए आपने अच्छी रकम दान में दी है।

२४. तखतगढ़ में श्री जैन भोजनशाला तथा पांजरापोल में आपने अच्छी धनराशि भेंट की है।

संघवी श्रीमान् देवीचन्दजी तथा उनका धर्मप्रेमी परिवार शासन प्रभावना के अनेकानेक कार्य करे, यही शुभ कामना करता हूँ।

वि. सं. २०४१
पौष शुक्ला पंचमी
गुरुवार

मास्टर बाबूलाल मणिलालजी
तखतगढ़ (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय निवेदन

आचार्यश्रीसुशीलसूरिज्ञानमन्दिर की तरफ से यह **श्रीमहादेवस्तोत्र** नाम का ग्रन्थ **मनोहरा टीका तथा हिन्दीपद्यानुवाद-भाषानुवाद सहित** प्रकाशित करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है।

इस ग्रन्थ के कर्त्ता-कलिकाल सर्वज्ञ, परमार्हतोपासक-श्रीकुमारपालभूपालप्रतिबोधक, श्रीसिद्धहेमव्याकरणादि अनेक ग्रन्थसर्जक, अनुपमशासनप्रभावक, परमपूज्य आचार्य-पुङ्गव **श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहेब** हैं।

इस ग्रन्थ पर सरल संस्कृत भाषा में **मनोहरा** नाम की **टीका** तथा **हिन्दीपद्यानुवाद** एवं **हिन्दीभाषानुवाद** करने वाले शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-तपोगच्छाधिपति-भारतीयभव्यविभूति-अखण्डब्रह्मतेजोमूर्ति-महाप्रभावशाली-प्राचीनश्रीकदम्बगिरि आदि अनेक तीर्थोद्धारक-परमपूज्या-चार्यमहाराजाधिराज श्री श्री श्री १००८ **श्रीमद्विजयनेमि-सूरीश्वरजी म० सा०** के सुविख्यात पट्टालंकार-साहित्य-सम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न-सप्ताधिक-लक्षश्लोकप्रमाणनूतनसंस्कृतसाहित्यसर्जक-परमशासनप्रभावक-बालब्रह्मचारी-परमपूज्याचार्यप्रवर **श्रीमद्विजयलावण्यसूरी-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वरजी म० सा० के प्रधान पट्टधर-धर्मप्रभावक-शास्त्र-विशारद-कविदिवाकर-व्याकरणरत्न-स्याद्यन्तरत्नाकरादि-अनेक ग्रन्थकारक-देशनादक्ष-बालब्रह्मचारी-परमपूज्याचार्यवर्य **श्रीमद्विजयदक्षसूरीश्वरजी म० सा०** के सुप्रसिद्ध पट्टधर-जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न-तीर्थप्रभावक-राजस्थानदीपक-मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण-सूरि-मन्त्रसमाराधक-सुशीलनाममालाद्यनेकग्रन्थसर्जक-बालब्रह्म-चारी-पूज्यपादाचार्यदेव **श्रीमद्विजयसुशीलसूरीश्वरजी म० सा०** हैं।

आपका परम पवित्र संयमी जीवन आदर्श जीवन है। आप संयम की उत्तम आराधना के साथ शासनप्रभावना का सुन्दर कार्य कर रहे हैं। सदा ज्ञान-ध्यानादिक में मग्न रहकर विविध ग्रंथों की रचना कर रहे हैं। परमपूज्य कलिकालसर्वज्ञ भगवन्त **श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा०** विरचित इस **'महादेवस्तोत्र'** पर संस्कृत में सरल टीका, हिन्दीपद्यानुवाद तथा हिन्दीभाषानुवाद करने के लिये परमपूज्य गुरुदेव आचार्य म० सा० को राजस्थान-मरुधरस्थ कालन्द्री निवासी प्रोफेसर **श्रीजवाहरचन्दजी पटनी** फालना वाले ने विज्ञप्ति की। तदनुसार परमपूज्य आचार्य भगवन्त ने इस ग्रन्थ पर टीका आदि कार्य प्रारम्भ किया। पूर्वे वि० सं० १९९१ की साल में गुजरात-सौराष्ट्र के भावनगर से **श्री जैन आत्मानंद सभा** की तरफ से प्रकाशित 'श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीतराग-महादेवस्तोत्र' (गुर्जरभाषान्तर युक्त) की पुस्तिका तथा वि० सं० २०१६ की साल में शा० भाईलाल अम्बालाल पेटलाद वाला की ओर से प्रकाशित **'स्तोत्रत्रयी'** जिसमें सकलार्हत्स्तोत्र-वीरजिनस्तोत्र-महादेवस्तोत्र **हैं**; इन तीनों पर पन्न्यासश्रीकीर्त्तिचन्द्रविजयगरिण, वर्त्तमान में शासनसम्राट् समुदाय के विद्वान् पूज्य आचार्य **श्रीमद्विजय-कीर्त्तिचन्द्रसूरिजी म० सा०** की रची हुई **'कीर्त्तिकला'** नाम की व्याख्या युक्त पुस्तिका भी दृष्टिगोचर हुई। दोनों पुस्तिकाओं को अपनी दृष्टि में रखकर तथा उनका सहारा भी लेकर पूज्यपाद आचार्य म० सा० ने इस ग्रंथ पर सरल संस्कृत भाषा में रम्य **मनोहरा टीका** तथा **हिन्दी-पद्यानुवाद** एवं **भाषानुवाद** का कार्य विशेष प्रयत्न द्वारा टूंक समय में पूर्ण किया है।

जालौर निवासी **पण्डित श्री हीरालालजी शास्त्री** ने इस ग्रंथ की मनोहरा टीका आदि का सुसंशोधन कार्य किया है।

परमपूज्य गुरुदेव आचार्य म० श्री के विद्वान् शिष्यरत्न-प्रवक्ता-कार्यदक्ष-**पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म० सा०** ने इस ग्रंथ का सुसम्पादन कार्य किया है।

इस ग्रंथ का प्राक्कथन **प्रोफेसर श्रीचेतनप्रकाश जी पाटनी** जोधपुर वालों ने लिखा है। इस ग्रन्थ का अक्षर-संयोजन व सुन्दर सेटिंग **श्रीराधेश्यामजी सोनी** और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेख मोहम्मद साबिर जोधपुर वालों ने किया है।

इस ग्रंथ में मुद्रित **'श्रीमहादेवस्तुत्यष्टकम्'** इस नाम से रचने की प्रेरणा करने वाले सिरोही निवासी विधि-कारक **श्री मनोजकुमार बाबूमलजी हरण** (एम. कॉम.) हैं।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में पूज्यपाद आचार्य म० सा० के पट्टधर-शिष्यरत्न-सुमधुरभाषी **पूज्य उपाध्याय जी महाराज श्री विनोद विजयजी गणिवर्य** के सदुपदेश से तखतगढ़ निवासी **संघवी श्रीदेवीचन्दजी श्रीचन्द्रजी** ने द्रव्य-सहायता प्रदान कर सम्पूर्ण लाभ लिया है।

परमपूज्य आचार्य भगवन्त की आज्ञानुसार हमारे प्रेस सम्बन्धी प्रकाशन कार्य में पूर्ण सहकार देने वाले जोधपुर निवासी **श्री सुखपालजी भंडारी** ने इस ग्रन्थ को शीघ्रतर प्रकाशित करने की प्रेरणा की है और सक्रिय प्रयास किया है। इन सभी का हम हार्दिक आभार मानते हैं।

अन्त में, वाचक वर्ग तथा अध्यापक प्रस्तुत **महादेव-स्तोत्रम्** के अध्ययन और अध्यापन से अवश्य ही लाभान्वित होंगे तथा **देवाधिदेव श्रीवीतराग जिनेश्वर भगवन्त की अनुपम भक्ति से अपनी आत्मा को** अवश्यमेव पवित्र करेंगे, ऐसी आशा है।

—प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोकानुक्रम

श्लोक संख्या	श्लोक का प्रथम चरण		पृष्ठ संख्या
●	मङ्गलाचरणम्	.....	१
१.	प्रशान्तं दर्शनं यस्य ...	.....	३
२.	महत्त्वादीश्वरत्वाच्च....	.....	६
३.	महाज्ञानं भवेद्यस्य....	.....	९
४.	महान्तस्तस्करा ये तु....	.....	१२
५.	रागद्वेषौ महामल्लौ	....	१४
६.	शब्दमात्रो महादेवो....	....	१६
७.	शक्तितो व्यक्तितश्चैव....	.....	१९
८.	नमोऽस्तु ते महादेव !....	.....	२२
९.	महारागो महाद्वेषो....	.....	२५
१०.	महाकामो हतो येन....	....	२८
११.	महाक्रोधो महामानो....	....	३१
१२.	महानन्ददये यस्य....	....	३३
१३.	महावीर्यं महाधैर्यं ...	.....	३७
१४.	स्वयम्भूतं यतो ज्ञानं ...	.....	३९
१५.	शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः....	.....	४३
१६.	साकारोऽपिह्यनाकारो ..	....	४६
१७.	दर्शनज्ञानयोगेन ...	.....	४९
१८.	परमात्मा सिद्धिप्राप्तौ ...	.....	५३
१९.	सकलो दोषसम्पूर्णो....	.....	५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक सख्या	श्लोक का प्रथम चरण		पृष्ठ संख्या
२०.	एकमूर्तिस्त्रयो भागा.....	.....	५९
२१.	एकमूर्तिस्त्रयो भागा.....	.....	६२
२२.	कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा.....		६५
२३.	प्रजापति सुतो ब्रह्मा.....	.....	६८
२४.	वसुदेवसुतो विष्णु.....	.....	७०
२५.	पेढालस्य सुतो रुद्रो.....	.....	७३
२६.	रक्तवर्णो भवेद् ब्रह्मा.....	.....	७५
२७.	अक्षसूत्री भवेद् ब्रह्मा.....	.....	७८
२८.	चतुर्मुखो भवेद् ब्रह्मा....	....	८१
२९.	मथुरायां जातो ब्रह्मा.....	.....	८३
३०.	हंसयानो भवेद् ब्रह्मा ...	....	८५
३१.	पद्महस्तो भवेद् ब्रह्मा.....	.....	८८
३२.	कृते जातो भवेद् ब्रह्मा ...	.....	९१
३३.	ज्ञानं विष्णुः सदा प्रोक्तं....	.....	९३
३४.	क्षितिजलपवनहुताशन.....	....	९८
३५.	क्षितिरित्युच्यते.....	....	१०१
३६.	यजमानो भवेदात्मा	....	१०४
३७.	सौम्यमूर्तिरुचिश्चन्द्रो.....	.....	१०७
३८.	पुण्यपापविनिर्मुक्तो.....	....	११०
३९.	अकारेण भवेद् विष्णुः ..	....	११३
४०.	अकार आदिधर्मस्य.....	.....	११७
४१.	रूपिद्रव्यस्वरूपं वा.....	....	१२०
४२.	हता रागाश्च द्वेषाश्च.....	.....	१२३
४३.	सन्तोषेणाऽभिसम्पूर्णः.....	.....	१२६
४४.	भवबीजाङ्कुरजनना.....	.....	१२९

।। इतिमहादेवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—अन्य विषयानुक्रम—

क्र.सं.	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	टीका-पद्य-भाषानुवाद कारकस्य प्रशस्तिः	..	१३४
२.	श्रीमहादेवस्तुत्यष्टकम्.....	.. .	१३६
३.	अरिहन्त पद की भावना....	.....	१३७
४.	सिद्धपद की भावना ...	....	१३९
५.	हित शिक्षा ..	.....	१४०
६.	नव प्रश्न.....	....	१४१
७.	हितोपदेश	.....	१४२
८.	मेरी भावना	.....	१४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐 ॐ नमः सिद्धम् 卐

।। ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ।।

।। देवाधिदेवश्रीजिनेन्द्राय नमः ।।

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितं

श्रीमहादेवस्तोत्रम्

तस्योपरि

जैनधर्मदिवाकराचार्यश्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा विरचिता

मनोहरा टीका

[हिन्दीपद्यानुवाद–भाषानुवादसहिता]

मङ्गलाचरणम्

नत्वा जिनं महावीरं, सर्वज्ञं सुरसेवितम् ।
वीतरागं महादेवं, कामदं मोक्षदं प्रभुम् ।। १ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीमार्हतीं स्तुत्वा, गौतमं श्रुतकेवलीम् ।
सुधर्मस्वामिनं चैव, वीरपट्टाभ्रभास्करम् ।। २ ।।

स्मृत्वा श्रीनेमिसूरीशं, सद्गुरुं ब्रह्मचारिणम् ।
पूज्यं शासनसम्राजं, तीर्थोद्धारधुरन्धरम् ।। ३ ।।

तथा लावण्यसूरीशं, शास्त्रविशारदं वरम् ।
पूज्यं साहित्यसम्राजं, व्याकृतौ च बृहस्पतिम् ।। ४ ।।

दक्षं श्रीदक्षसूरीशं, काव्य-शास्त्रविशारदम् ।
शब्दानुशासने रत्नं, कविदिवाकरं गुरुम् ।। ५ ।।

सर्वज्ञैः कलिकाले श्री-मद्हेमचन्द्रसूरिभिः ।
रचितं श्रीमहादेव-स्तोत्रं रम्यं मनोहरम् ।। ६ ।।

क्रियते बालबोधार्थं, तस्य टीका मनोहरा ।
पद्य-भाषानुवादोऽपि, सुशीलसूरिणा मया ।। ७ ।।

[१]

अवतरणिका –

अत्र हि कलिकालसर्वज्ञेन पूज्यपादाचार्यदेव श्रीमद्-हेमचन्द्रसूरीश्वरेण सर्वगुणनिष्पन्नं श्रीमहादेवं स्तोतुमुपक्रान्त आदौ शिवं स्तुवन्नाह---

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

प्रशान्तं दर्शनं यस्य, सर्वभूताऽभयप्रदम् ।
मङ्गल्यं च प्रशस्तं च, शिवस्तेन विभाव्यते ॥१॥

अन्वयः –

'यस्य दर्शनं प्रशान्तं, सर्वभूताऽभयप्रदम्, मङ्गल्यं च प्रशस्तं च, तेन शिवः विभाव्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यस्य=महादेवस्य, महान् चासौ देवश्च महादेवस्तस्य महादेवस्य देवाधिदेवस्य । **दर्शनम्**=प्रत्यक्षीकरणमवलोकनमित्यर्थः । **प्रशान्तम्**=प्रकर्षेण शान्तं प्रशान्तं, उपशमप्रतिपादकत्वात् कार्ये कारणोपचाराच्छान्तिप्रदमित्यर्थः । न तु अन्यदर्शनप्रसिद्धदेववद् नयनदेहवदनादिविकारादुग्रमुद्वेगकरमसौम्यमित्यप्रशान्तमिति भावः । तथा **सर्वभूताऽभयप्रदम्**=सर्वेषां भूतानां निखिलानां प्राणिनां कृते अभयप्रदं निर्भयप्रदं भयाऽभावं प्रददाति, भयं न करोतीति तत् तादृशम्, न तु देवान्तरवच्छस्त्रादिकसान्निध्यात् कोपप्रमुखाविष्टत्वात् निजद्वेषिघातेत्यादेश्च कदाऽपि कस्याऽपि भयप्रदमिति भावः । अत एव, **मङ्गल्यम्**=मङ्गलकारकं एवं मङ्गलस्वरूपम् । सम्यग्ज्ञानादिमङ्गलप्रयोज्यकत्वान्मङ्गलप्रयोजकम्, 'नन्दी मङ्गलम्' इत्युक्तेरिति बोध्यम् । एतेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनस्य मङ्गलात्मत्वं सूचितम् । स्वयं अमङ्गलस्य मङ्गलहेतुत्वाऽयोगादिति बोध्यम् । अत एव, **प्रशस्तम्**=प्रशंसनीयं वर्णनीयमदुष्टमिष्टं च । दर्शनश्रेष्ठम्, वस्तुवास्तविकप्रतिपादकत्वात् सन्मार्गप्रदर्शकत्वाच्चेति भावः ।

यदुक्तम्--

"सर्वमंगल-मांगल्यं, सर्वकल्याण-कारणम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।" इति

एतेन दर्शनस्याऽवश्यकरणीयत्वं सूच्यते । अप्रशस्तं दर्शनं न तत् कस्याऽपि करणीयम् । अप्रशस्तप्रशस्तत्वयोर्हेयोपादेयत्वप्रयोज्यकत्वात् इति बोध्यम् । **च द्वयं** सर्वविशेषणसमुच्चये प्रोक्तम् । तेन चैकैकमात्रस्याऽपर्याप्तत्वं सूच्यते । **तेन**=उक्तगुणमहिम्ना, स इति यच्छब्दबलाद् लभ्यते । **शिवः**=शिवं कल्याणमस्त्यस्येति स समानः शिवपदवाच्यः इत्यर्थः । **विभाव्यते**=प्रकाश्यते ज्ञायते विचार्यते वा । लौकैरितिशेषः । यो हि मङ्गलकारकः कल्याणकारकः शुभकारकः शुभगुणाश्रयश्च तस्यैव शिवपदवाच्यत्वं परमार्थतः । अन्यस्तु नाम्नैव शिवः । शिवपदार्थस्वारस्यतश्च तद्दर्शनस्य न शिवत्वमिति वस्तुतः सोऽशिव एवेति गूढाख्यातम् ।

अत्रानुष्टुप्वृत्तं, तल्लक्षणमाह--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्वि-चतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरुविजानीयात्, एतद् पद्यस्य लक्षणम् ।।"

पद्यानुवाद –

[हरिगीत छन्द]

जिसका ही दर्शन अनुपम प्रशान्तरस से पूर्ण है,
जग के सभी जीवों को भी वे अभयप्रद दर्शन हैं ।
मंगलकारक और शुभ प्रशंसनीय भी इष्ट है,
इस हेतु से वे विश्व में 'शिव' सदा कहे जाते हैं ।।१।।

शब्दार्थ –

यस्य=जिस देव का । **दर्शनम्**=देखना । **प्रशान्तम्**=प्रकृष्ट शान्त । **सर्वभूताऽभयप्रदम्**=सर्व जीवों को अभय देने वाला । **मङ्गल्यम्**=मङ्गलकारक अर्थात् मंगल-स्वरूप । **तेन**=दर्शन का प्रशान्त इत्यादि होने के हेतु । **शिवः**=शुभ, शिव ऐसे । **विभाव्यते**=कहे जाते हैं ।। १ ।।

श्लोकार्थ –

जिनका दर्शन शान्त है, सर्व जीवों को अभयदेनेवाला है, मंगलकारक और प्रशंसनीय है, उससे वे **शिव** कहे जाते हैं अर्थात् वे ही सच्चे शिव हैं । महादेव भी वे ही हैं । सच्चे वीतराग विभु जिनेश्वरदेव भी वे ही हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

जिस देव के दर्शन शान्त हैं, भयकारक नहीं हैं तथा मंगलकारक एवं प्रशंसनीय हैं अर्थात् जिस देव के दर्शन करने से आत्मा को शान्ति मिलती है, भय नहीं होता है, इतना ही नहीं मंगल भी होता है, इसलिये ऐसे देव के दर्शन शुभ और इष्ट हैं। अतः ऐसे देव ही शिव कहे जाते हैं। जो निग्रहाऽनुग्रह से रहित हैं वे ही सच्चे शिव हैं। बाकी हिंसादिक से जो युक्त हैं वे तो नाम मात्र से ही शिव कहे जा सकते हैं, वास्तविक नहीं ॥ (१)

[२]

अवतरणिका –

निरुक्तिपूर्वकं तमेव शिवं महेश्वरत्वेन स्तौति--

मूलपद्यम् –

महत्त्वादीश्वरत्वाच्च, यो महेश्वरतां गतः ।
राग-द्वेषविनिर्मुक्तं, वन्देऽहं तं महेश्वरम् ॥

अन्वयः –

'यः महत्त्वात्, च ईश्वरत्वात्, महेश्वरतां गतः, राग-द्वेषविनिर्मुक्तम्, तं महेश्वरम् अहं वन्दे' इत्यन्वयः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोहरा टीका –

यः=यादृशो देवः, शिव इत्यभिसन्धिः । **महत्त्वात्**= मह्यते पूज्यते अनेनेति महान्, असाधारणालौकिकसहजा-द्यतिशयसमृद्धिमत्त्वाल्लौकैरिति महान् । **यदुक्तम्**='नित्यं स उत्तमेभ्योऽप्युत्तमः तस्मात् पूज्यतम एव' इति । **ईश्वरत्वात्** =ऐश्वर्यस्य निधानः, ईश्वरः तस्मात् ईश्वरत्वात् । ईष्टे पदार्थयाथात्म्यसद्धर्ममुक्तिमार्गादिकमनुशास्ति लोकानित्येवं-शील ईश्वरः, समस्तैश्वर्यसम्पन्नश्च, तस्य भावस्तस्मात् ईश्वरत्वात् । **च**=समुच्चये । **महेश्वरताम्**=महांश्चाऽसा-वीश्वरश्च महेश्वरः तस्य भावस्तत्तां देवाधिदेवत्वमित्यर्थः । **गतः**=प्राप्तः । **रागद्वेषविनिर्मुक्तम्**=रागश्च द्वेषश्च राग-द्वेषौ तयोः विनिर्मुक्तमसम्पृक्तं रागद्वेषविनिर्मुक्तम्, उपलक्ष-णत्वात् कषायादिभिः रहितं वीतरागमित्यर्थः । वीतराग एव महानीश्वरश्चेति स एव महेश्वरः । अन्यस्तु राग-द्वेषादिपरतन्त्रतया न महान् न वेश्वर इति भावः । अत एव, **तम्**=तादृशं महत्त्वादीश्वरत्वाच्च महेश्वरतां गतं वीतरागं । **महेश्वरम्**=महेश्वरेत्यन्वर्थसंज्ञासंज्ञिनम् देवाऽधिदेवमित्यर्थः । **अहम्**=हेमचन्द्राचार्यः । **वन्दे**=प्रणमामि नमामीति ।।२।।

पद्यानुवाद –

[**हरिगीत छन्द**]

सब देव के भी देव हैं जो सर्व समृद्धिवंत हैं ,
मानते महेश्वर उनको वे ज्ञान-ऐश्वर्य युत हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागद्वेषरहित ये भी वीतराग कहे जाते हैं,
ऐसे महेश्वर देव को नमन मेरा ही नित्य है ।। २ ।।

शब्दार्थ –

यः=जिसने । **महत्त्वात्**=महिमासे । **च**=तथा । **ईश्वरत्वात्**=ऐश्वर्य (प्रभुता अर्थात् ठकुराई) से । **महेश्वरताम्**=महेश्वरत्व । **गतः**=प्राप्त किया है । **राग-द्वेषविनिर्मुक्तम्**=राग और द्वेष से रहित । **तम्**=उस । **महेश्वरम्**=महेश्वर (महादेव) को । **अहम्**=मैं । **वन्दे**=वन्दन (नमन) करता हूँ ।। २ ।।

श्लोकार्थ –

जिसने अपनी महिमा से और ऐश्वर्य से महेश्वरत्व प्राप्त किया है, तथा जो राग और द्वेष से रहित है, ऐसे महेश्वरदेव को मैं वन्दन-नमन करता हूँ । (२)

भावार्थ –

जिस देव ने असाधारण एवं अलौकिक अनंत ज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र आदि अनेक गुणरूपी महिमा से तथा सहज आदि अतिशयरूपी ऐश्वर्य (ठकुराई) से महेश्वरत्व प्राप्त किया है अर्थात् जो महेश्वर याने महादेव कहा गया है । मैं राग और द्वेष से रहित वीतराग ऐसे उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महेश्वर-महादेव को वन्दन याने प्रणाम-नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

[३]

अवतरणिका –

केवलज्ञानादिविशेषवैशिष्टयादेव देवस्य महत्त्वमित्याह–

मूलपद्यम् –

महाज्ञानं भवेद्यस्य, लोकालोकप्रकाशकम् ।
महादया-दम-ध्यानं, महादेवः स उच्यते ॥

अन्वयः –

'यस्य लोकालोकप्रकाशकं महाज्ञानं भवेद् महादया-दम-ध्यानं, सः महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यस्य=यादृशस्य देवस्य । **लोकालोकप्रकाशकम्**=लोकमलोकञ्च लोकालोके तयोः प्रकाशकं लोकालोकप्रकाशकम् । लोकस्य लोकवर्ती त्रिकालवर्ती सर्वद्रव्यपर्यायात्मकं अलोकस्य च अदृशस्यापि प्रकाशकं परिच्छेदकम्, अत एव । **महाज्ञानम्** महत् च असौ ज्ञानं महाज्ञानम् । महत् सकलपदार्थविषयत्वादनन्तत्वाच्छुद्धत्वाच्च श्रेष्ठतमं यज्ज्ञानं तत् केवलज्ञानमित्यर्थः । **भवेत्**=स्यात् । तथा, **महादया-दम-ध्यानम्**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

=महान् चाऽसौ दया च महादया, सश्च दमः तच्च ध्यानं तेषां समाहारो दयादमध्यानं, यस्येति भवेदिति च सम्बध्यते । महद्यत् समस्तजीवविषयत्वान्निष्कारणत्वाच्च सर्वोत्कृष्टा **दया**=परदुःखप्रहाणेच्छा वर्त्तते । सा च सर्वेन्द्रियविषयत्वाद् विवेकसंयुक्ताच्चाऽनल्पोऽसाधारणश्च **दमः** =इन्द्रियनिग्रहः । स च शुभात्मकत्वान्निर्विकल्पत्वाच्च यद् **ध्यानं**=शुक्लध्यानमिति ध्येयम् । **यथोक्तम्**—"ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं त्रयमेकात्मतां गतम्" इति च । **सः**=तादृशो महाज्ञानदयादमध्यानवान् देव एव । **महादेवः**=महत् चासौ देवश्च महादेवः, महादेवपदप्रतिपाद्यः । **उच्यते**=कथ्यते । महादेवपदेन स एव गीयते स्तुत्यते वीतरागत्वात् कीर्त्यते इत्यर्थः । न तु अन्य एवेति भावः ।। ३ ।।

पद्यानुवाद –

जिसको महाज्ञान लोका - लोकप्रकाशक पूर्ण है ,
विश्व के सभी जीवों प्रति सुदया भी अतिमहान है ।
इन्द्रियमनोनिग्रह महा, शुक्लध्यान भी महा है ,
कहे जाते वह विश्व में महादेव सच्चे जिन हैं ।। ३ ।।

शब्दार्थ –

यस्य=जिसका । **महाज्ञानम्**=केवलज्ञान । **लोकालोकप्रकाशकम्**=लोक और अलोक दोनों को प्रकाशित करनेवाला, **महादया-दम-ध्यानम्**=महान् दया (अहिंसा) महान् दम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(इन्द्रियमनोनिग्रह) और महान् ध्यान (शुक्लध्यान) हैं। **सः**=वह। **महादेवः**=महादेव। **उच्यते**=कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ –

जिसका लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाला महाज्ञान (केवलज्ञान) है, महान् दया, इन्द्रियों का दमन और शुभध्यान है, वही महादेव कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ –

जिनका महान् ज्ञान **केवलज्ञान** लोक तथा अलोक दोनों का प्रकाशक है अर्थात् लोक और अलोक दोनों को जानने वाला ज़िनका महान् ज्ञान है अर्थात् जो सर्वज्ञ-केवलज्ञानी है तथा जिनके दया, दम और ध्यान ये तीनों महान् हैं अर्थात् जिन देव की **दया** (अहिंसा) जगत् के सर्व जीवों के प्रति महान् है अन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट है, कभी भंग नहीं होने के कारण जिनका **दम** (इन्द्रिय-मनोनिग्रह) असाधारण है और **ध्यान** निर्विकल्प समाधिरूप सर्वोत्तम शुक्लध्यान है, वे ही **महादेव** कहे जाते हैं। अन्य नहीं ॥ ३ ॥

[४]

अवतरणिका –

इन्द्रियद्वारा देवस्य पुनर्महत्त्वमाह--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

महान्तस्तस्करा ये तु, तिष्ठन्तः स्वशरीरके ।
निर्जिता येन देवेन, महादेवः स उच्यते ॥

अन्वयः –

'स्वशरीरके तिष्ठन्तः ये महान्तः तस्कराः येन देवेन निर्जिताः स तु महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

स्वशरीरके=स्वकीयं निजं यच्छरीरं, स्वार्थे कः तस्मिन् स्वशरीरके अर्थात्-निजदेहे । **तिष्ठन्तः**=स्थिताः वर्त्तमानाः । **ये**=यत्प्रकाराः । **महान्तः**=बलवन्तो दुर्निग्र्राह्याः । **तस्कराः**=चौराः, इन्द्रियस्वरूपा तस्कराः "**चौरस्तु प्रतिरोधकः** । दस्युः पाटच्चरः स्तेनस्तस्करः पारिपन्थिकः" इति हैमः । अन्ये बाह्याः चौरास्तु धनधान्यादिकमेवापहरन्ति, किन्तु आभ्यन्तरिकास्तु सर्वस्वं दर्शनादिकमपहरन्ति । ते तस्कराः । **येन**=यत् प्रकारेणाऽनन्तज्ञानादिमता संवरसंवृते न । **देवेन**=देवपदवाच्येन । **निर्जिताः**=निगृहिताः यो देवो जितेन्द्रियः संवरसंवृतश्चेति निष्कृष्टोऽर्थः । **स तु**=स एव, **महादेव उच्यते** । बाह्यचौरजयवदाभ्यन्तरचौरजयो येन विहितः स महादेवः । महादेवेति ख्यातः सैव वीतरागः कथ्यतेति भावः, न तु अन्येव ।। ४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

स्व देह में रहे हुए इन्द्रियादि महातस्करो ,
लगे हुए कषायादि भी कर्मरूपी ये तस्करो ।
वे सभी को निज शक्ति से जिसने ही जीत लिये हैं ,
उनको ही जग में जिनेन्द्र महादेव कहे जाते हैं ।। ४ ।।

शब्दार्थ –

स्वशरीरके=अपने अंग में । **तिष्ठन्तः**=रहे हुए । **ये** =जो । **महान्तः**=बहुत बड़े । **तस्कराः**=**चोर** हैं, वह । **येन**=जिस, **देवेन** देव से । **निर्जिताः**=जीते गये हैं । **स तु** =वह ही । **महादेवः**=महादेव । **उच्यते**=कहे जाते हैं ।।४।।

श्लोकार्थ –

अपने शरीर में जो महान् तस्कर (चोर) रहे हैं, उनको जिस देव ने जीत लिये हैं वे ही **महादेव** कहे जाते हैं ।। ४ ।।

भावार्थ –

अपने शरीर में ही जो महान् तस्कर (चोर) प्रच्छन्न विद्यमान हैं वे सभी तस्कर इन्द्रिय स्वरूप में आत्मसम्पदा का सतत हरण करने की ताक में रहते हैं । अनन्त ज्ञानादिक से समलंकृत जिस देव ने उनको जीत लिया है, वह जितेन्द्रिय देव ही **महादेव** है, अन्य नहीं ।। ४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

सम्प्रति वीतरागत्वेन महादेवत्वमाह--

मूलपद्यम् –

राग-द्वेषौ महामल्लौ, दुर्जयौ येन निर्जितौ।
महादेवं तु तं मन्ये, शेषा वै नामधारकाः॥

अन्वयः –

'येन महामल्लौ दुर्जयौ रागद्वेषौ निर्जितौ, तं तु महादेवं मन्ये, शेषा वै नामधारकाः' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

येन=यत् प्रकारेण देवेन। **महामल्लौ**=महान् चासौ मल्लश्च महामल्लस्तौ महामल्लौ महान्तौ पराऽपेक्षया देह-बलादिवैशिष्टयात् शारीरिकविशिष्टशक्तिसम्पन्नौ दृढाङ्ग-धारकौ ताविव। अत एव। **दुर्जयौ**=दुःखेन जीयेते इति तादृशौ कष्टसाध्यनिग्रहौ मल्लौ। **राग-द्वेषौ**=रागश्च द्वेषश्चेति रागद्वेषौ, रागो विषयेष्वादरो द्वेषोऽनिष्टपदार्थेऽ-प्रीतिस्तादृशौ तौ। **निर्जितौ**=निगृहीतौ। **तं तु**=तमेव, तादृशं महामल्लरागद्वेषविजेतारं देवमित्यर्थः। **महादेवं**=महादेवपदाऽभिधेयम्। **मन्ये**=स्वीकरोमि। रागद्वेषादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महामल्लजेतुर्महादेवत्वं सहेतुकमित्यतस्तदेव स्वीकाराऽर्हं वीतरागं जिनेश्वरमिति । **शेषाः**=रागद्वेषादिजेतुरन्ये महादेवपदकथिताः । **वै**=निश्चयतः । **नामधारकाः**=महादेवेति नामैव धारयन्ति, न तु तत्र महादेवपदार्थोऽपि घटते । तस्मात् ते रूढ्यैव महादेवा कथ्यते न तु योगत इति वस्तुतस्ते न महादेवाः । रागद्वेषादिपरतन्त्राणां देवानां रागद्वेषादिविजेता महानिति वीतरागो जिनेश्वर एव भावतो महादेवो मन्यते, नाऽन्ये । तस्माद् यद् वक्ष्यत्यनुपदमेव-- "शब्दतो गुणतश्चैवाऽर्थतोऽपि जिनशासने" इति भावः ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद –

जगत में दुर्जय राग द्वेष रूपी महामल्लों को ,
जिसने जीते हैं भवरण सर्वथा दो मल्ल को ।
उनको ही मैं महादेव विभु मानता हूँ विश्व में ,
अन्य तो मात्र महादेव नामधारी हैं विश्व में ॥ ५ ॥

शब्दार्थ –

येन=जिसने । **राग-द्वेषौ**=राग और द्वेषरूपी । **दुर्जयौ** =महाकष्ट से जीतने लायक । **महामल्लौ**=महान् मल्लों को । **निर्जितौ**=जीत लिये हैं । **तम्**=उसको । **तु**=ही । **महादेवम्**=महादेव । **मन्ये**=मैं मानता हूँ । **शेषाः**=अवशिष्ट (अतिरिक्त अन्य) । **वै**=तो । **नामधारकाः**=महादेव ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामधारण करने वाले ही हैं।

श्लोकार्थ –

महाकष्ट से जीतने लायक महामल्लरूप राग और द्वेष को जिसने जीत लिया है, उसे ही मैं '**महादेव**' मानता हूँ। दूसरे तो मात्र महादेव (ऐसे) नाम को धारण करने वाले ही हैं ।। १ ।।

भावार्थ –

अत्यन्त कठिनाई से जो जीते जाते हैं अर्थात् जो दुस्साध्य हैं ऐसे रागद्वेषरूपी महान् मल्लों को जिस देव ने जीत लिया है, उस देव (वीतराग जिनेश्वर) को ही मैं महादेव मानता हूँ। अर्थात् अन्य देवों से अजेय रागद्वेषादि को जीतने वाले को ही महादेव कहना योग्य है। अन्य देव तो मात्र नाम से ही महादेव हैं, इसलिये वे अर्थ तथा गुण से वास्तविक रूप से महादेव नहीं है ।। ५ ।।

[६]

अवतरणिका –

ननु नामभावमहादेवयोः कतरस्तवेष्ट इति चेत् तत्राह–

मूलपद्यम् –

शब्दमात्रो महादेवो, लौकिकानां मते मतः
शब्दतो गुणतश्चैवाऽर्थतोऽपि जिनशासने ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'लौकिकानां मते मतः महादेवः शब्दमात्रः जिनशासने शब्दतः अर्थतोऽपि गुणतश्चैव (प्रतिपादितम्)' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

लौकिकानाम्=लोका एव लौकिकास्तेषां लौकिकानाम् सामान्यानां शास्त्रज्ञानरहितानाम्, अर्थात्-साधारणजनानां वस्तुतत्त्वग्रहणानभिज्ञानामित्यर्थः । **मते**=शास्त्रे सिद्धान्ते शासने इत्यर्थः । **मतः**=इष्टः प्रतिपादितश्च, **महादेवः**= महादेवेति संज्ञां धारितो देवः, अर्थात् महादेवाऽभिधो देवः । **शब्दमात्रः**=शब्दत एवेत्यर्थः । न तु तत्र महादेवपदार्थो महादेवगुणो वा, रागद्वेषादिसत्त्वाद् महत्त्वाऽभावात् । एवञ्च यन्महत्त्वाऽभावेऽपि महादेवः कथ्यतेऽतो नामनिक्षेप-विषय एवेति शब्दमात्र एव, न तु भावनिक्षेपविषयत्वाद् भावत इति तात्पर्यं मन्यते इति । ननु तर्हि महादेवः क्व पारमार्थिको मत इति चेत् तत्राह--**जिनशासने**=रागद्वेषा-द्यन्तरशत्रून् जयतीति जिनः तस्य शासने जिनशासने जैन-शास्त्रे इत्यर्थः । **शब्दतः**=महादेवशब्देन कृत्वा, सार्व-विभक्तिकस्तस् । **गुणतः**=सर्वेन्द्रियजयवीतरागत्वादिभिर्गुणैः कृत्वा । **चैव**=इति समुच्चये । अत एव, **अर्थतः**=महां-श्चाऽसौ देवश्चेत्यर्थसद्भावेन कृत्वा । **अपि**=समुच्चये । एवञ्च श्रीजैनशासनमतो महादेव एव भावनिक्षेपविषयत्वाद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथार्थवास्तविको महादेव इति। लौकिकमताऽपेक्षया परमार्थतो वस्तुग्राहित्ववैशिष्टचाल्लोकोत्तरं श्रीजिनशासनं जैनधर्ममिति ध्वन्यते । जैनशासनसम्मत एवेति स एवाऽऽश्रयणीयो महादेवः । नाऽन्यतीर्थसम्मतो महादेवो महादेवगुणस्य महादेवपदार्थस्य चाऽभावान्न स इष्ट इति भावः ।। ६ ।।

पद्यानुवाद –

लौकिक मत में महादेव शब्दमात्र ही माने है ,
किन्तु जिनशासनमहीं ये शब्दार्थ गुण से युक्त है ।
वे तीन गुणवंत सुमहादेव सच्चा ही मानना ,
इनसे भिन्न जो विश्व में कल्पित देव ही जानना ।। ६ ।।

शब्दार्थ –

लौकिकानां=लौकिक साधारण जनों (अन्यतीर्थिकों) के । **मते**=मत में । **मतः**=माने गये । **महादेवः**=महादेव । **शब्दमात्रः**=नाममात्र ही हैं । किन्तु, **जिनशासने**=जिनशासन-जैनधर्म में माने गये महादेव । **शब्दतः**=नाम से । **अर्थतोऽपि**=अर्थ से भी । **गुणतश्चैव**=और गुण से भी, (महादेव हैं) ।। ६ ।।

श्लोकार्थ –

लौकिक मत में मात्र शब्द (नाम) से ही महादेव माने गये हैं, लेकिन जिनशासन (जैनधर्म) में शब्द से, गुण से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रौर श्रर्थ से भी महादेव माने हैं ।। ६ ।।

भावार्थ –

जो शास्त्रज्ञान में श्रपटु लौकिक मत वाले हैं, एवं जिनका गुण एवं ज्ञान से आत्मसात् नहीं हुआ है ऐसे श्रज्ञानी, महादेव शब्द से ही महादेव को मानते हैं, गुण तथा श्रर्थ से नहीं । किन्तु, जिनशासन-जैनधर्म में माने गये जिनेश्वररूपी महादेव तो शब्द से, श्रर्थात् महादेव नाम से, एवं सर्वज्ञ-केवलज्ञान श्रादि होने के कारण श्रन्य देवों से श्रेष्ठ ऐसे श्रर्थ से तथा जितेन्द्रिय वीतराग श्रादि गुणों से भी समलंकृत सच्चे महादेव हैं । इससे श्रलावा कोई नहीं सारे विश्व में ।। ६ ।।

[७]

अवतरणिका –

गुणतोऽर्थतश्चेति विशदयति--

मूलपद्यम्--

शक्तितो व्यक्तितश्चैव,
विज्ञानाल्लक्षणात् तथा ।
मोहजालं हतं येन,
महादेवः स उच्यते ।। ७ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'येन मोहजालं हतं सः शक्तितः व्यक्तितः चैव विज्ञानात् तथा लक्षणात् महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

येन=यादृशेन देवेन । **मोहजालं**=मोहस्य जालं मोहजालं, मोहोऽस्वे स्वबुद्धिः । यदुकथितम्--

"अनित्यधनदेहादौ, नित्यत्वेन ममेति च ।
अज्ञानेनाऽऽवृत्ता बुद्धि-र्मोह इत्यभिधीयते ॥" इति ।

मोहान्धकारेण जालं परम्परां मोहपरम्परां । **हतं**=विनाशितम्, येन मोहस्त्यक्त इति । **सः**=तादृशो देवः । **शक्तितः** =स्वात्मवीर्यविशेषतः, वीतरागदेवस्य क्षायिकाऽनन्तवीर्यवत्त्वात् अर्थात्-निजात्मवीर्यतः महत् सर्वोत्कृष्टतां धार्यमाणः इति भावः । **व्यक्तितः**=सहजाद्यतिशयविशिष्टतया स्वीयेतर विलक्षणाऽलौकिकव्यक्तित्वमपेक्ष्य नाऽन्यः कोऽपि तत्सदृशः । **चैव**=इति समुच्चये । **विज्ञानात्**=विशिष्टज्ञानात् विशिष्टनिखिलद्रव्यपर्यायविषयत्वाद् विशुद्धत्वादनन्तत्वाच्चेतरापेक्षया सर्वोत्कृष्टं यज्ज्ञानं तस्मात्, लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानाद् हेतोरित्यर्थः । **तथा**=पुनः । **लक्षणात्**=सुरासुरेन्द्रनरेन्द्रमानवादिभिः नमस्यत्वादिरागद्वेषविजयादिरूपमहादेवलक्षणस्य सद्भावाद् हेतोश्च । **सः**=तादृशो मोह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जालविनाशिता देवः । **महादेवः**=महान् देवः । **उच्यते** =कथ्यते । यो गतमोहोऽनन्तवीर्यः सातिशयव्यक्तिर्विज्ञानवान्, अत एव महादेवलक्षणसहितश्च स महादेव उच्यते । अन्यस्तु शब्दमात्र इति भावः ।। ७ ।।

पद्यानुवाद –

स्वशक्ति से पूर्ण विज्ञान जिसको प्राप्त ही हुआ है ,
तथा व्यक्ति से भी लक्षण जिसका सदा दिखाता है ।
भव की सब मोहजाल का विध्वंस जिसने किया है ,
उनको ही वीतरागी विभु कहते ये महादेव हैं ।। ७ ।।

शब्दार्थ –

येन=जिसने । **मोहजालं**=मोहजाल को । **हतं**=विनाश कर दिया है । **सः**=वह । **शक्तितः**=शक्ति से । **व्यक्तितश्चैव**=तथा व्यक्तित्व से । **विज्ञानात्**=विशिष्टज्ञान-केवलज्ञान से । **तथा**=और । **लक्षणात्**=लक्षण से । **महादेवः** महादेव । **उच्यते**=कहे जाते हैं ।

श्लोकार्थ –

जिसने अपनी शक्ति से विज्ञान अर्थात् विशिष्टज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त किया है, तथा व्यक्ति से (प्रगट रूप में) जिसका लक्षण दिखने में आता हो, और (संसार के सभी) मोहजाल को विनाश कर दिया है, वह देव ही विश्व में वीतरागी महादेव कहा जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

जिस देवने (भव का) मोह-ममता के जालवृन्द को अर्थात् सभी प्रकार की ममताओं का विनाश कर दिया है, त्याग कर दिया है, वह देव अपनी शक्ति से, व्यक्तित्व से, विज्ञान-केवलज्ञान से और लक्षण से महादेव कहा जाता है। अर्थात्--जिसने अपने क्षायिक अनन्त आत्मवीर्य और केवलज्ञान के प्रभाव से एक-एक करके मोह-ममतादिक का विनाश कर दिया है, वही मोह--ममतादिक का विनाश करने वाले, निखिल कर्म के क्षय से आविर्भूत अनन्त आत्मवीर्य तथा सहजादि अतिशय विशिष्ट वाले असाधारण और अलौकिक व्यक्तित्व एवं लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान तथा लक्षण--इन सभी सद्गुणों की विद्यमानता होने से महादेव कहे गए हैं। विश्व में वे ही वास्तविक महादेव हैं। अन्य उक्त प्रकार की शक्ति आदि गुण नहीं होने के हेतु गुण से या अर्थ से महादेव नहीं हैं। यह कथन सर्वदा सर्वथा स्पष्ट ही है ॥ ७ ॥

[८]

अवतरणिका –

महामदलोभजयाख्यगुणेन स्तुवन्नाह--

मूलपद्यम् –

नमोऽस्तु ते महादेव ! महामदविवर्जित !
महालोभविनिर्मुक्त ! महागुणसमन्वित ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'महामदविवर्जित ! महालोभविनिर्मुक्त ! महागुण-समन्वित ! महादेव ! ते नमः अस्तु' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

महामदविवर्जित ! = महत् चासौ यः मदः महामदः तेन विवर्जितः महामदविवर्जितः तत् सम्बोधने महामद-विवर्जित ! महामदैर्ज्ञानाद्युत्कर्षाऽभिमानजनितौद्धत्यैर्विव-र्जितो रहितः । सर्वविधमदरहितत्वात् सर्वाधिको मदविव-र्जितः स एवेति निर्मदोत्तम इत्यर्थः । तथा, **महालोभविनि-र्मुक्त !** = महत् चासौ लोभः महालोभस्तेन विनिर्मुक्तः महालोभविनिर्मुक्तस्तत् सम्बोधने महालोभविनिर्मुक्त ! महा-लोभरहितः निर्लोभ इत्यर्थः । निष्परिग्रहत्वादिति भावः । अत एव, **महागुणसमन्वित !** = महत् चासौ गुणः महागुणः तेन समन्वितः महागुणसमन्वितः तत् सम्बोधने महागुण-समन्वित ! महन्तः ये गुणाः तैः विभूषितः शोभितः । सर्वभूतोपकारित्वादिभिः सर्वोत्कृष्टविशुद्धज्ञानादिभिश्च गुणैर्वैशिष्टयैः समन्वितः सहितः, यद्वा महान् निर्मदत्वादि-भिस्समस्तप्रकारैर्गुणैः कृत्वा सर्वोत्तमगुणसमलंकृत, गुणि-श्रेष्ठेत्यर्थः । अत एव च, **महादेव !** = महान् अन्यदेवाऽपेक्ष-याऽधिकगुणत्वात् सर्वश्रेष्ठश्चाऽसौ देवश्च महादेवः, तत् सम्बोधने महादेवः । यो हि महामद-महालोभादिरहितो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणवांश्च स महादेवः । **ते**=तुभ्यमेव तादृशानुत्तमविशेषण-सहिताय । **नमः**=नमस्कारः । **अस्तु**=भवेत् । महामद-लोभादिरहिताय महागुणलाभाय च तादृशो महादेव एव नमस्करणीयः शिवः सर्वोत्कृष्टत्वात् ।। ८ ।।

पद्यानुवाद –

विश्व में महामद वर्जित महादेव स्वरूपी हैं,
महालोभ से वर्जित भी ये चिद्धनस्वरूपी हैं।
महागुण से भी युक्त हैं ऐसे जिन महादेव हैं,
उनको ही मैं नमता हूँ जो जग में वन्दनीय हैं ।। ८ ।।

शब्दार्थ –

महामदविर्वाजित !=हे महान् मद (अभिमान, अहङ्कार) से रहित ! **महालोभविनिर्मुक्तः !**=हे महान् लोभ से रहित (अर्थात् निर्लोभ) ! **महागुणसमन्वित !**=हे महान् गुणों से समन्वित (अर्थात् विभूषित) ! **महादेव !**=हे महादेव (हे महेश्वर देव) ! **ते**= आपको । **नमः**=(मेरा) नमस्कार । **अस्तु**=हो ।। ८ ।।

श्लोकार्थ –

महान् मद से मुक्त, महान् लोभ से रहित और महान् गुणों से युक्त हे महादेव ! आपको (मेरा) नमस्कार हो ।। ८ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

अपने में सम्यग् ज्ञानादिक का महान् उत्कर्ष होने पर भी महा मद (अभिमान-अहंकार) से रहित होने के हेतु तथा किसी भी प्रकार के मद नहीं रहने के कारण हे महान् निर्मद ! किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं होने से तथा समस्त प्रकार के लोभ से रहित होने के हेतु हे महान् निर्लोभ एवं असाधारण तथा अलौकिक निरभिमानता, निर्लोभता, विश्व के सभी जीवों का महान् उपकार तथा लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान इत्यादि अनेक महान् गुणों से समलंकृत ऐसे हे महादेव ! (हे महेश्वर देव !) आपको मेरा (मन-वचन-काया से हार्दिक) नमस्कार अर्थात् प्रणाम है। अत एव सर्व गुणों से परिपूर्ण हे महादेव-जिनेश्वर देव ! विश्वभर में केवल आप ही हो। इसलिये मेरे सर्वदा नमस्करणीय, वन्दनीय, पूजनीय-सेवनीय एवं आदरणीय आदि आप ही हो। अन्य कोई नहीं ।। ८ ।।

[९]

अवतरणिका –

राग-द्वेषाद्यभावान्महादेवत्वमाह---

मूलपद्यम् –

महारागो महाद्वेषो, महामोहस्तथैव च ।
कषायश्च हतो येन, महादेवः स उच्यते ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'येन महारागः महाद्वेषः तथैव च महामोहः कषायः च हतः सः महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

येन=यत्प्रकारेणाऽद्भुताऽतिशयशालिना देवेन । **महारागः**=महत् चाऽसौ यो रागो महारागः महान् गुरुतरो दुष्परिहरत्वाद् दुर्जयश्च यो रागो विषयाऽनुरागः स तादृशः, "रागोऽनुरागोऽनुरति" रिति हैमः । **महाद्वेषः**=महत् चाऽसौ द्वेषो महाद्वेषः महान् गुरुतरो दुष्परिहरत्वाद् दुर्जयश्च यो द्वेषोऽनिष्टेष्वप्रीतिः स तादृशः । **तथैव च**= अन्योऽपि तत्सदृशः, इति समुदायः समुच्चये । **महामोहः**= महत् चाऽसौ मोहो महामोहः महान् गुरुतरो दुष्परिहरत्वाद् दुर्जयश्च यो मोहोऽस्वे स्वबुद्धिः, स तादृशः । **कषायः**= संसारे कष्यतेऽनेनेति कषायः क्रोधमानमायालोभात्मकाऽऽत्माऽशुभाऽध्यवसायः, अर्थात्---आत्मनोऽशुभपरिणामः । **च**=समुच्चये । **हतः**=विनाशितः त्यक्त इत्यर्थः । रागद्वेषादीनां हि विनाश एव त्याग इति बोध्यम् । **सः**=तादृश महारागद्वेषमोहकषायादिविनाशसाधनाऽसाधारणाऽलौकिकाऽऽत्मवीर्यसम्पन्नः । **महादेवः**=महादेवपदप्रतिपाद्यः । **उच्यते**=कथ्यते ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

जगत में जिसने किया है विनाश ही महाराग का ,
तथा किया है विनाश भी स्वशक्ति से महाद्वेष का ।
महामोह-कषाय का भी सर्वथा किया विनाश है ,
उनको ही कहते जग में वे ही जिन महादेव हैं ।। ६ ।।

शब्दार्थ –

येन=जिसने, **महारागः**=महान् राग तथा **महाद्वेषः** =महान् द्वेष, एवं **महामोहः**=महान् मोह तथा **कषायः**= कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), इन सभी का **हतः**=विनाश किया है, **सः**=ऐसा वह (देव) ही, **महादेवः** =महादेव, **उच्यते**=कहा जाता है ।

श्लोकार्थ –

जिस देव ने महाराग, महाद्वेष, महामोह और कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) इन सभी का विनाश किया है--अर्थात् त्याग किया है, ऐसा वह देव ही **महादेव** कहा जाता है ।

भावार्थ –

जिस देव ने अपने आत्मा के साथ अनादि काल से रहे हुए अत्यन्त दृढ़ एवं दुर्जय ऐसे महान् राग, महान् द्वेष, महान् मोह तथा (क्रोध, मान, माया, लोभरूप) कषाय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सभी का विनाश किया है अर्थात् त्याग कर दिया है। वह देव ही महादेव कहा जाता है। विश्व में इन सभी गुणों से युक्त जिनेश्वर भी महादेव हैं, अन्य नहीं ॥ ९ ॥

[१०]

अवतरणिका –

महाव्रतोपदेशादिना महादेवत्वमाह--

मूलपद्यम् –

महाकामो हतो येन, महाभयविवर्जितः।
महाव्रतोपदेशी च, महादेवः स उच्यते ॥

अन्वयः –

'येन महाकामः हतः महाभयविवर्जितः महाव्रतोपदेशी च सः महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

येन=यत् प्रकारेण देवेन। **महाकामः**=महत् चाऽसौ कामः महाकामः महान् दृढतरो दुर्जयश्च यः कामो भोगोपभोगेच्छा स तादृशः। **हतः**=विनाशितः सर्वविधकामहन्तेति यावत् निष्कामोऽस्तीति। मन्मथारि अस्तीतिभावः। ननु निष्कामोऽपि निर्भयो न भवेदिति चेत् तत्राह--**महाभयविवर्जितः**=महत् चाऽसौ भयो महाभयस्तस्मात् विवर्जितो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाभयविवर्जितः, महान् गुरुतरकारणप्रसूतत्वाद् दुर्निवारत्वादनल्पं यद् भयं तदेव महद्भयं दुरुच्छेद्यत्वात्, अन्यादृशं चौरादिभयं तु कथञ्चिदन्यैरप्युच्छेदत्वादित्यल्पभयादपि रहितः, निखिलकर्मक्षीणत्वात् सर्वथा निर्भय इति। महाभयविवर्जितस्य रहितस्य हि नाऽल्पं भयमपीति बोध्यम्। विश्वजनोपकाराऽपेक्षयाऽपि तस्य महत्त्वमपेक्षितमित्याह-- **महाव्रतोपदेशी**=महत् च यत् व्रतं महाव्रतं तस्योपदेशी महाव्रतोपदेशी महत् सर्वोत्कृष्टमोक्षादिफलप्रदत्वात् सर्वश्रेष्ठतमं यद्महाव्रतमहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाद्यात्मकं चारित्रं महाव्रतं तदुपदिशतीत्येवंशीलः, तादृशमहाव्रतस्योपदेशोऽस्त्यस्य विधेयतया प्रतिपाद्यतया च वा सः ब्रह्मस्वरूपी। **च**=समुच्चये। **सः**=तादृशो देवः। **महादेवः**= महान् देवः। **उच्यते**=कथ्यते। नाऽन्यः ॥ १० ॥

पद्यानुवाद –

जिस देव ने किया महान् कामदेव का विनाश है,
और जग में महाभय से जो सर्वदा निर्मुक्त है।
महाव्रतों के उपदेशी विश्वोपकारी नित्य हैं,
जग में कहे जाते यही वीतराग महादेव हैं॥ १० ॥

शब्दार्थ –

येन=जिसने, **महाकामः**=महान् कामदेव का, **हतः**= विनाश किया है, तथा जो, **महाभयविवर्जितः**=महान् भय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से रहित है, **च**=तथा, **महाव्रतोपदेशी**=महाव्रतों के उपदेश देने वाले हैं, **सः**=वह ही, **महादेवः**=महादेव, **उच्यते**=कहे जाते हैं।

श्लोकार्थ –

जिसने महान् कामदेव का विनाश किया है, तथा जो महान् भय से रहित है, और महाव्रतों के उपदेश करने वाले हैं, वे ही **महादेव** कहे जाते हैं।

भावार्थ –

जिस देव ने अतिदुर्जय ऐसे कामदेव को नष्ट किया है, भोग तथा उपभोग की इच्छारूपी महा काम का त्याग किया है, अर्थात् जो सर्वथा निष्काम है, तथा महाभय से विवर्जित है अर्थात् निखिल कर्मों का क्षय करने से जो जन्म, जरा और मरण इत्यादिरूप भव के महान् भयों से रहित-अत्यन्त निर्भय हैं एवं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह रूपी पाँच महान् व्रतों का सदुपदेश करने वाले हैं, वे देव ही महादेव कहे जाते हैं ॥ १० ॥

[११]

अवतरणिका –

क्रोधादिशत्रुजेतृत्वेन महादेवत्वमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

महाक्रोधो महामानो, महामाया महामदः।
महालोभो हतो येन, महादेवः स उच्यते ॥

अन्वयः –

'येन महाक्रोधः, महामानः, महामदः, महालोभः हतः स महादेव उच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

येन=यत् प्रकारेण देवेन। **महाक्रोधः**=महत् चाऽसौ क्रोधः महाक्रोधः महान् हिंसादिप्रवृत्तिप्रयोजकतयाऽतिचिर-स्थायितयाऽनल्पश्च यः क्रोधोऽनेकाऽनिष्टप्रयोजकतया स्व-सजातीयेषु गुरुतरः कोपः तथा **महामानः**=महत् चाऽसौ मानः महामानः महान् गुर्वादिष्वप्यवज्ञा प्रयोजको यो मानो मम जात्यादिकं सर्वोत्तमं नाऽन्यः कोऽपि मादृश इत्येवं जातिकुलैश्वर्याद्यभिमानः, सः। तथा, **महामाया**=महती चासौ माया महामाया शाठ्यं मिथ्याव्यापारेण परवञ्चनादिरूपा सा। "माया तु शठता शाठ्यं" इति हैमः। **महामदः**=महत् चाऽसौ मदो महामदः, महान् अविनयादिप्रयोजकत्वाद् गुरुतरो यो मदोऽहङ्कारो बलैश्वर्याद्याधिक्यभावना-जनितचित्तोद्रेकः, सः। तथा **महालोभः**=महत् चासौ लोभो महालोभः, महान् स्वल्पेऽपि पदार्थे-वस्तुनि महाजनादियाञ्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिप्रयोजकत्वाद् अत्यन्तलघुत्वसम्पादकत्वाद् महाबलवानतिमात्रश्च यो लोभः परनिजग्रहणेच्छा, सः । **हतः**=परिहृतः । **सः**=तादृश महाक्रोधादिहननसाधनाऽसाधारणाऽलौकिकाऽऽत्मवीर्यसम्पन्नः योगी **महादेवः**=महादेवलक्षणोपेतः स महादेवः । **उच्यते**=कथ्यते । नाऽन्यः ।। ११ ।।

पद्यानुवाद –

जिस देव ने विनाश किया सर्वथा महाक्रोध का ,
महामान-माया-मद का किया नाश महालोभ का ।
उसको ही कहते जग में सच्चे वह महादेव हैं ,
अन्य सभी देवों सरागी कषाय से भी समेत हैं ।। ११ ।।

शब्दार्थ –

येन=जिसने । **महाक्रोधः**=महान् क्रोध । **महामानः**=महान् मान । **महामाया**=महान् माया । **महामदः**=महान् मद । तथा **महालोभः**=महान् लोभ, इन सभी का **हतः**=विनाश किया है अर्थात्--त्याग कर दिया है । **सः**=वह । **महादेवः**=महादेव । **उच्यते**=कहा जाता है ।

श्लोकार्थ –

जिस देव ने महाक्रोध, महामान, महामाया, महामद तथा महालोभ इन सभी का विनाश किया है, त्याग कर दिया है, वे देव ही **महादेव** कहे जाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

जिस देव ने (अहिंसा, संयम और तप के बल से) अति उत्कट हिंसा आदि में प्रवृत्ति कराने तथा स्थायी एवं विशेष परिमाण में होने के हेतु महान् क्रोध, गुरु आदि के प्रति अवज्ञा कराने वाले तथा अत्यन्त अधिक होने के कारण जाति-कुल आदि का महान् मान-अभिमान, पर प्रवञ्चना रूप महान् माया (अपार माया), अविनयादिक का प्रेरक तथा बलवत्तर बलादिक के अभिमान से होने वाली महान् मद उद्धतता, एवं दुस्त्याज्य महान् लोभ, इन सभी का विनाश-त्याग किया है अर्थात् जो देव महा क्रोध-मान-माया-लोभ रूप कषाय रहित एवं महामद रहित अर्थात् निर्मद हैं, वे देव ही वीतराग **महादेव** कहे जाते हैं अन्य नहीं ।। ११ ।।

[१२]

अवतरणिका –

प्रकारान्तरेणाऽपि महादेवत्वमित्याह–

मूलपद्यम् –

महानन्ददये यस्य, महाज्ञानी महातपाः ।
महायोगी महामौनी, महादेवः स उच्यते ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'यस्य, महानन्ददये, महाज्ञानी, महातपाः, महायोगी, महामौनी, सः महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यस्य=यादृशस्य देवस्य । **महानन्ददये**=महान् चासौ आनन्दो महानन्दः । स च दया च महानन्ददये अखण्ड-निरुपाधिनिर्विकल्पत्वात् सर्वश्रेष्ठः, तथा महती निखिल-जीवविषयत्वादलौकिकी ते च, आनन्दः सुखं दयाऽऽर्त्तत्रा-णेच्छा च ते च महानन्ददये । महानन्दो दया यस्येति पाठोऽपि दृश्यते । तथा सति, महानन्दो दया महादया च यस्येत्यर्थः । आशुतोषेति । गुणान्तरमप्याह–**महाज्ञानी**=महत् चाऽसौ ज्ञानी महाज्ञानी सर्वकालविषयादिना यो सर्वज्ञः त्रिकालदर्शी महदनन्तत्वात् समस्त विषयत्वात् क्षायिकत्वात् सर्वविशुद्धं च यज्ज्ञानं केवलज्ञानं तदस्त्यस्येति स तादृशः । यो महाज्ञानी तस्यैव महानन्ददये इति भावः । महाज्ञानं समर्थयन्नाह--**महातपाः**=महान् चासौ तपः महा-तपः तस्य बहुवचने महातपाः महत्परैरसाध्यत्वाद् सर्वोत्कृष्टं सर्वविशुद्धं च तपोऽनशनादिरूपं यस्य स तादृशः । ज्ञान-तपसोः फलमाह–**महायोगी**=य महत् चाऽसौ योगो महा-योगस्तं धारयतीति महायोगी, महान् सर्वाऽतिशयमूलतया सर्वकर्मक्षयप्रयोजकतया चाऽनुपमो योगश्चारित्रं समाधिर्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्य सः, परमयोगी-योगीन्द्र इत्यर्थः । पुनः किं विशिष्टम्? **महामौनी**=महत् चाऽसौ मौनः यस्य स महामौनी महत् सर्वोत्तमत्वात् सर्वश्रेष्ठं यन्मौनं वाचंयमता, तदस्त्यस्येति सः । किञ्च महत् सर्वाऽतिशायि यन्मौनं मुनित्वं मुनेर्भावः कर्म च, तदस्त्यस्येति सः । महाज्ञानचारित्रवन्तः सम्यक्त्वसम्पन्नश्चेत्यर्थः । यदुक्तम्---

"सम्यक्त्वमेव तन्मौनं,
मौनं सम्यक्त्वमेव वै ।" इति बोध्यम् ।

सः=तादृशो महानन्ददये इत्यादि विशेषणवान् देव एव । सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्यायादेवाऽर्थो लभ्यते । **महादेवः**=महादेवपदप्रतिपाद्यः । **उच्यते**=कथ्यते । अर्थात्--महादेवपदेन लोके स एव गीयते इत्यर्थः ।। १२ ।।

पद्यानुवाद –

जिस देव के आनंद और दया भी अति महान् हैं,
महाज्ञानी-तपस्वी भी ये योगी भी महान् हैं ।
महामौनधारी जग में शुभ लक्षणों से युक्त हैं,
कहते महादेव उनको जो सच्चे जिनेश्वर हैं ।। १२ ।।

शब्दार्थ –

येन=जिसके । **महानन्ददये**=आनंद तथा दया दोनों महान् हैं, तथा जो **महाज्ञानी**=महान्ज्ञानी अर्थात् केवल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी। **महातपाः**=महान् तपस्वी। **महायोगी**=महान् योगी, तथा **महामौनी**=महान् मौनी हैं। **सः** वही। **महादेवः**=महादेव। **उच्यते**=कहे जाते हैं।

श्लोकार्थ –

जिसमें महानंद और महादया है, तथा जो महाज्ञानी, महातपस्वी, महायोगी और महामौनधारी है, वे ही **महादेव** कहे जाते हैं।

भावार्थ –

जिस देव का आनंद महान् अर्थात् शाश्वत, अजन्म, अखण्ड, निरुपाधिक एवं निर्विकल्प होने के हेतु सर्वोत्कृष्ट है, तथा जिस देव की दया महान् अर्थात् विश्व के सभी जीवों के प्रति समान होने के कारण सर्वोत्तम है। तथा जो देव अनन्त एवं समस्तपदार्थविषयक सम्पूर्ण महान् ज्ञान वाले अर्थात् केवलज्ञानी हैं। दुष्कर, विशुद्ध तथा अत्यधिक अनशन आदि तप करने के कारण जो महान् तपस्वी हैं। सहज इत्यादि अतिशयों का कारणरूप होने से अलौकिक एवं असाधारण योग से जो युक्त महायोगी हैं। निराकार भी हैं। तथा महान् विशुद्ध मौनी अर्थात् मौनव्रतपालक और मुनियों के महान् लक्षणों से अर्थात् सर्वोत्तमभावों एवं विशुद्ध क्रियाओं से युक्त महामौनी हैं; इसलिये वे देव ही **महादेव** कहे जाते हैं। अन्य नहीं ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

वीर्यादिमहत्त्वान्महादेवत्वमाह---

मूलपद्यम् –

महावीर्यं महाधैर्यं, महाशीलं महागुणः ।
महामञ्जुक्षमा यस्य, महादेवः स उच्यते ॥

अन्वयः –

'यस्य महावीर्यं महाधैर्यं महाशीलं महागुणः महामञ्जुक्षमा सः महादेवः उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यस्य=यादृशस्य देवस्य । **महावीर्यं**=महान् चाऽऽसौ वीर्यं महावीर्यं, ब्रह्मस्वरूपी महदसाधारणत्वादनल्पं सर्वाधिकं सर्वोत्तमं च यद् वीर्यं सातिशय-उत्साहः, तत् । **महाधैर्यं**=महत् च तत् धैर्यं महाधैर्यं, महदत्युग्रोपसर्गादावप्यचलितत्वात् सर्वाधिकं यद् धैर्यमत्वराऽनुद्वेगः, तत् । **महाशीलं**=महान् चाऽऽसौ शीलं महाशीलं, महदसाधारणत्वादखण्डत्वाच्च सर्वोत्तमं यच्छीलं चारित्रं तत् । **महागुणः**=महान् चाऽऽसौ गुणः महागुणः, महदसाधारणत्वादलौकिकत्वात्सर्वोपकारकत्वाच्च सर्वोत्कृष्टो यो गुणो विशेषणं सम्यग्दर्शन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान-चारित्रादिर्दयादिश्च, सः। **महामञ्जुक्षमा**=महती च मञ्जुक्षमा महामञ्जुक्षमा, महती या मञ्जु शोभना क्षमा तच्छीलः मनोरमा तितिक्षा तया शोभितः आशुतोषेति संज्ञया सार्थको भवति। एवमेतानि यस्य, सः=तादृशो देवः, **महादेवः**=अत एव महादेवलक्षणोपेतश्च स महादेवः। **उच्यते**=कथ्यते। नान्यः ॥ १३ ॥

पद्यानुवाद –

महावीर्य महाधैर्य भी जिस देव के उत्कृष्ट हैं,
महाशील व महागुण भी जिनके ही सर्वोत्तम हैं।
जिसकी महामंजुक्षमा जग में भी सर्वाधिक है,
कहे जाते वे विश्व में सच्चे जिन महादेव हैं ॥ १३ ॥

शब्दार्थ –

यस्य=जिसके। **महावीर्यं**=वीर्य-आत्मबल महान् है। **महाधैर्यं**=धैर्य-सन्तोष महान् है। **महाशीलं**=शील-चारित्र महान् है। **महागुणः**=गुण-सम्यग् दर्शनादि महान् हैं, तथा **महामञ्जुक्षमा**=जिनकी क्षमा (अपराध की सहनशीलता) महान् है। **सः**=वह। **महादेवः**=महादेव। **उच्यते**=कहे जाते हैं। अर्थात् वे वीतराग जिनेश्वर देव ही सर्वोत्कृष्ट हैं।

श्लोकार्थ–

जिनके महावीर्य, महाधैर्य, महाशील, महागुण हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनकी महामञ्जुक्षमा अर्थात् बड़ी सुन्दर क्षमा है, **वे ही** **महादेव** कहे जाते हैं ।

भावार्थ –

जिस देव के **महावीर्य** यानी महान् आत्मबल एवं उत्साह क्षायिक होने के हेतु अनन्त हैं, **महाधैर्य**--महान् धैर्य यानी संतोष स्थिर एवं सर्वोत्कृष्टाशुतोष **महाशील**--महान् शील-यानी चारित्र असाधारण, अलौकिक एवं सर्वोत्कृष्ट है, **महागुण**--महान् गुण सम्यग्दर्शनादि अप्रतिपाती एवं अनन्त हैं, तथा जिनकी **महामञ्जुक्षमा**--महान् मञ्जुक्षमा यानी अपराध की सहनशीलता महान् प्रशंसनीय सर्वोत्तम अत एव मञ्जु-मनोहर है, वे जिनेश्वरदेव ही महादेव कहे जाते हैं । अन्य नहीं ।। १३ ।।

[१४]

अवतरणिका –

महादेवस्यैव स्वयम्भूपदवाच्यतेत्याह--

मूलपद्यम् –

स्वयम्भूतं यतो ज्ञानं, लोकाऽलोकप्रकाशकम् ।
अनन्तवीर्यचारित्रं, स्वयम्भूः सोऽभिधीयते ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'यतः, लोकालोकप्रकाशकम्, ज्ञानं, स्वयम्भूतं, अनन्तवीर्यचारित्रं, सः, स्वयम्भूः, उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यतः=यस्य देवस्य । **लोकाऽलोकप्रकाशकम्**=लोकश्च अलोकश्च लोकालोकौ तयोः प्रकाशकं लोकालोकप्रकाशकम्, लोकस्य चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य विश्वस्याऽलोकस्य लोकबहिर्भूतस्य च यावत् आकाशप्रदेशस्य प्रकाशकं परिच्छेदकम् । विभुमिति । **ज्ञानं**=केवलज्ञानम्-यावत् परिपूर्णज्ञानम्, तज्ज्ञानं हि क्षायिकमिति निरावरणत्वाद् लोकालोकप्रकाशकमिति ज्ञेयम् । कीदृशम् ? **स्वयम्भूतं**=स्वयमात्मना एव भूतं प्राप्तमाविर्भूतमजन्मानं न तु परोपदेशेन वा । ज्ञानावरणीयादिचत्वारघातिकर्मसर्वथाक्षये हि मेघापगमे सूर्यवद्ज्ञानं स्वयमेवाऽऽविर्भवति प्रगटयतीत्यर्थः । किञ्च निखिलजिनवराणां क्षयोपशमवशाद् जन्मत एव मति-श्रुताऽऽवधिज्ञानत्रयसहितत्वं निसर्गत एवेति बोध्यम् । तथा, **अनन्तवीर्यचारित्रं**=अनन्तं च तद् वीर्यचारित्रं अनन्तवीर्यचारित्रं, न अन्तमनन्तं क्षायिकत्वादेवाऽविनश्वरं वीर्यं सातिशय उत्साहश्चारित्रं शीलं च समुद्भूतं अत एव **सः**=यतो यस्यैतानि, तत एव तादृशः । **स्वयम्भूः**=ज्ञानस्य स्वयम्भूतत्वादेव स्वयम्भूरित्येवम्, सैव गुणतः शब्दतोऽर्थतश्चेति । **अभिधीयते**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीयते । यस्य महादेवस्य स्वयम्भूत:, वीतरागत्वमिति भाव: ।। १४ ।।

पद्यानुवाद --

किया घात घातीकर्म का सर्वथा जिसने महा ,
लोकालोकप्रकाशक ज्ञान भी प्राप्त किया महा ।
अनन्तवीर्य-चारित्र भी स्वयमेव प्राप्त किये हैं ,
ऐसे स्वयम्भू विश्व में जिनेश्वर कहे जाते हैं ।।१४।।

शब्दार्थ –

यत:=जिसके । **लोकालोकप्रकाशकम्**=लोक तथा अलोक का प्रकाशक-जानने वाला । **ज्ञानं**=केवलज्ञान । **स्वयम्भूतं**=अपने आप प्रगट हुआ है, तथा जिसके अनन्त वीर्य तथा अनंत चारित्र भी अपने आप प्राप्त हैं । **स:**=वह ही । **स्वयम्भू:**=स्वयम्भू । **अभिधीयते**=कहे जाते हैं ।

श्लोकार्थ –

जिनके सम्पूर्ण लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान, अनन्त वीर्य तथा अनन्त चारित्र अपने आप उत्पन्न हुए हैं, वे ही **स्वयम्भू** कहे जाते हैं ।

भावार्थ –

जिस देव के लोक और अलोक दोनों का प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिच्छेद करने वाला-जानने वाला अर्थात् अतीत-अनागत-वर्त्तमान इन तीनों कालों में निखिलद्रव्य-पर्याय का ग्रहण करने वाला ऐसा जो केवलज्ञान, गुरु आदि के उपदेश के विना जन्म से ही मति-श्रुत-अवधिज्ञानत्रय युक्त होने के कारण सर्वोत्कृष्ट संयम-चारित्र के परिपालन से तप द्वारा ज्ञानावरणीयादि चार घाती कर्मों का सर्वथा घात-विनाश हो जाने से अपने आप प्रगट-उत्पन्न हो गया है; जो अजन्मा है ऐसे स्वयम्भू तथा जिस देव के वीर्य-आत्मबल एवं चारित्र क्षायिक होने से अनन्त हैं निर्वाण स्वरूप हैं अर्थात् जिस देव के लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान तथा अनन्तवीर्य एवं अनन्त चारित्र, कर्मों के सर्वथा क्षय हो जाने से अपने आप प्रगट-उत्पन्न हो गये हैं, वह देव ही एकमात्र परमार्थ रूप से स्वयम्भू कहा जाता है। ऐसे स्वयम्भूत-केवलज्ञान, अनन्त वीर्य तथा अनन्त चारित्र वाले वीतराग देव स्वयंभू ही हैं। कभी भी दूसरे नहीं ।। १४ ।।

[१५]

अवतरणिका –

ननु यद् भवता शब्दतोऽर्थतश्च इत्युच्यते जिनशासने, स किमभिध इत्यपेक्षायामाह--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः,
शङ्करश्च प्रकीर्तितः।
कायोत्सर्गी च पर्यङ्की,
स्त्री-शस्त्रादिविवर्जितः॥

अन्वयः –

'यस्मात् जिनः कायोत्सर्गी च पर्यङ्की स्त्रीशस्त्रादि-विवर्जितः शिवः प्रोक्तः च शङ्करः प्रकीर्तितः' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

यस्मात्=यतो हेतोः। **जिनः**=रागाद्यन्तरशत्रून् जयतीति जिनस्तीर्थङ्करः, श्रीऋषभदेवादयः। **कायोत्सर्गी**=शरीरमुत्सृज्यते श्लथत्वेन स्थाप्यते श्लथशरीर-नासाग्रनियतस्थिरदृष्टचा यत्र स कायोत्सर्गः सोऽस्त्यस्येति सः कायोत्सर्गी। कस्मात् हेतो जिनः कायोत्सर्गेण समाधिस्थो भवति तर्हि जिनः शिवेति भावः। तथा, **पर्यङ्की**=पर्यङ्कस्यासने स्थितः। क्रियाकाले कायोत्सर्गी समाधौ च पर्यङ्कीत्येवं कालभेदेनाऽवस्थाभेदेन चोभयोः सत्त्वं ज्ञेयम्। पर्यङ्को लक्षणमाह–

"स्याज्जङ्घयोरधोभागे, पादोपरिकृते सति।
पर्यङ्को नाभिगोत्तान-दक्षिणोत्तरपाणिकः" इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः=स्त्री च शस्त्रादिश्च स्त्रीशस्त्रादि-स्तैर्विवर्जितः स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः, अर्थात्--स्त्रीदाराश्च शस्त्रमायुधश्चादिना वाहन-भूषणादि च तैर्विवर्जितो रहितः, निर्गुणनिष्परिग्रहः, इति यावत् । **च**=समुच्चये । यच्छब्दबलात् तस्मादिति लभ्यते । **शिवः**=शिव इत्यभिधया, **प्रोक्तः**=प्रकर्षेण उक्तः प्रोक्तः प्रगीतः इत्यर्थः । **शङ्करः**= शं करोतीति शङ्करः, शं कल्याणं करोतीति स तादृशः । **च**=समुच्चये । **प्रकीर्तितः**=उपवर्णितः ।

सारांशः –

कायोत्सर्गे समाधौ पर्यङ्कासने स्थितः सः शिवः न किमपि वाहनं धारयति, नालङ्कारादिनाऽलङ्कृतो समाधौ न दारादिसहितः । सः शिवः शङ्करः यस्मात् जिनः प्रोक्तः । अन्यो न शिवो नाऽपि शङ्करः, किन्तु शब्दमात्रेणैव । गुणतोऽर्थतः शब्दतश्च जिन एव वीतराग देव एव तादृश इति ।। १५ ।।

पद्यानुवाद –

जिनकी कायोत्सर्ग मुद्रा पर्यंकासने शोभती ,
स्त्री-शस्त्रादि शून्य ये भी, प्रशम रस मग्न ही दिसती ।
ऐसे प्रभु जिणंद को ही शिव और शंकर जानना ,
उनसे रहित अन्य देवों को सुदेवसम न मानना ।। १५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ –

यस्मात्=जिस कारण से। **जिनः**=वीतराग-जिनेश्वर-देव। **कायोत्सर्गी**=कायोत्सर्ग-काउसग्ग मुद्रा को धारण करने वाले। **च**=तथा। **पर्यङ्की**=पर्यङ्कासन को धारण करने वाले एवं **स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः**=स्त्री और शस्त्र आदि से रहित हैं, इसलिये वे, **शिवः**=शिव। **प्रोक्तः**=कहे गये हैं। **च**=तथा। **शङ्करः**=शङ्कर। **प्रकीर्तितः**=कहे गये हैं।

श्लोकार्थ –

जिस कारण से अर्हत्-वीतराग-जिनेश्वर प्रकीर्तित हैं वह यह है कि वे जिनेश्वर कायोत्सर्ग-काउसग्ग मुद्रा में तथा पर्यंकासने स्थित एवं स्त्री तथा शस्त्र-आयुध आदि से रहित हैं। इसलिये जिन शिव कहे गये हैं तथा शङ्कर कहे गये हैं। अर्थात् उनका वर्णन शिव और शङ्कर शब्दों से किया जाता है।

भावार्थ –

अर्हत्-वीतराग-जिनेश्वर देव कायोत्सर्गी अर्थात् काउ-स्सग्ग मुद्रा को धारण करने वाले तथा निर्विकल्प, निष्प्र-कम्प और निरुपाधिक ध्यान-समाधि के लिये पर्यङ्क आसन से रहने वाले एवं स्त्री तथा शस्त्र-आयुध आदि से विमुक्त-रहित हैं। इस हेतु से वे जिनेश्वर देव ही शिव तथा शङ्कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से वर्णित हैं। केवल नाममात्र से नहीं, किन्तु गुण तथा अर्थ से भी उनका वर्णन तद् रूप में किया जाता है ॥ १५ ॥

[१६]

अवतरणिका –

महादेवस्य साकार-निराकारत्वादि यद्वर्ण्यते तत् तथैवेति न तावताऽपि तस्य वैशिष्टचमाह–

मूलपद्यम् –

साकारोऽपिह्यनाकारो, मूर्तोऽमूर्तस्तथैव च।
परमात्मा च बाह्यात्मा, सोऽन्तरात्मा तथैव च ॥

अन्वयः –

'सः, हि, साकारः, अपि, मूर्त्तः, च, तथैव, अनाकारः, अमूर्त्तः, च, तथैव, परमात्मा, बाह्यात्मा, अन्तरात्मा' इत्यन्वयः ॥

मनोहरा टीका –

सः=महादेवः। **हि**=यतः। **साकारः**=आकारेण सहितः साकारः, संसारिणां कृते तदवस्थायां शरीरित्वादाकारेण यथाक्रमसन्निविष्टशरीरादिसहिताऽऽकृतिविशेषेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्तः, न तु देवान्तरवदवतारग्रहहणे, स महादेव अजन्मा मुक्तावस्थायां अस्ति अतः जन्मग्रहणाऽभावः । मुक्तस्य जन्मग्रहणाऽयोगात् । जन्मादितो मुक्तिरेव हि मुक्तिरिति ज्ञेयम् । अत एव, **मूर्त्तः**=आकाररूपः, आत्मनः स्वभावतोऽमूर्त्तत्वेऽपि संसाराऽवस्थायां कर्माऽष्टकयुक्ताऽऽत्मप्रदेशत्वाद् देहस्याऽधिष्ठितत्वाच्च कथञ्चिद् रूपीति व्यवहारनयेन ज्ञातव्यम् । **अपि**=किन्तु, साकारस्य निराकारता विरुध्यतेऽपि अपेक्षाभेदेन त्वविरोध इति सूच्यते । **तथैव**=इति समुच्चये । **अनाकारः**=न आकारोऽनाकारः, सिद्धाऽवस्थायां कर्मणां सर्वथाऽभावाद् निराकारः, अशरीरीत्यर्थः । संसारात् सर्वथा मुक्तः, इति यावत् । **च**=यतोऽनाकारोऽत एव । **अमूर्त्तः**=न मूर्त्तोऽमूर्त्तः । अरूपी, सर्वथा कर्मसम्बन्धाऽभावात् कथञ्चिद् मूर्त्तत्वस्याऽप्यभावादिति भावः । यस्मात् परेष्टदेवस्य यथा साकारनिराकारत्वादि तथा श्रीजिनशासनेष्टदेवस्याऽपीति न तावता कस्यचिदेकस्याऽपि न्यूनत्वमुत्कर्षो वा कथयितुं-वर्णयितुं शक्यते इति । पुनः वीतरागो महादेवस्य परमात्मत्वादिकमप्याह—**परमात्मा, बाह्यात्मा, तथैव अन्तरात्मा च** । **परमात्मा**=परमश्चासौ आत्मा च परमात्मा सिद्धस्वरूपी । **बाह्यात्मा**=बाह्यश्चासौ आत्मा च बाह्यात्मा केवलकर्मकाययुक्ता । **अन्तरात्मा**=अन्तर-अभ्यन्तरश्चासौ आत्मा च अन्तरात्मा कायरूपा चेति परमात्मादित्वमनुपदमेव स्वयमेव कथयिष्यते इति । जिनशासनेष्टस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महादेवस्यैव प्रशान्तं दर्शनं यस्येत्यादिना वर्णितं वैशिष्ट्यं सर्वोत्तमं वर्त्तते । नत्वन्यदेवस्यैवेति ।। १६ ।।

पद्यानुवाद –

साकार निराकार भी वह मूर्त्ताऽमूर्त्तज रूप है,
परमात्मा व बाह्यात्मा भी अन्तरात्मा स्वरूप है।
ऐसे स्वरूपी विश्व में वीतराग महादेव हैं,
न मिले उनकी जोड जग में विश्वजन से पूजित हैं ।। १६ ।।

शब्दार्थ –

सः=ये महादेव श्रीजिनेश्वर भगवान। **हि**=जिस कारण से। **साकारः**=आकार सहित-शरीरी हैं, इसलिये, **मूर्त्तः**=रूप,स्पर्शादि गुणवाले-सगुण हैं। **च**=और। **तथैव**=उसी तरह। **अनाकारः**=आकाररहित-अशरीरी (सिद्धावस्था में) हैं, इसलिये, **अमूर्त्तः**=रूप स्पर्शादि गुणरहित हैं। **च**=पुनः। **तथैव**=उस माफिक ही। **परमात्मा**=सिद्धस्वरूपी। **च**=तथा। **बाह्यात्मा**=औदारिकादि देहरहित और सिद्धि रहित केवल कर्मशरीर सहित, एवं **अन्तरात्मा**—देही अवस्था में अन्तरात्मा भी हैं ।। १६ ।।

श्लोकार्थ –

ये महादेव श्री जिनेश्वर भगवान साकार होने पर भी अनाकार-निराकार हैं, मूर्त्त याने मूर्त्तिमान् होने पर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमूर्त हैं, उसी प्रकार परमात्मा (सिद्ध स्वरूपी), बाह्यात्मा (केवल कर्मशरीरी) एवं अन्तरात्मा (देही) रूप में भी हैं।

भावार्थ –

ये महादेव श्री जिनेश्वर भगवान मोक्ष में जाने से पहले देह-शरीर होने के कारण स्वभावतः आत्मा अमूर्त होने पर भी स्वात्मप्रदेशों के कर्मयुक्त होने से कथञ्चित् मूर्त हैं। तथा सम्पूर्ण सिद्धावस्था में शरीर रहित होने से अमूर्त हैं। तथा तीर्थंकर एवं सिद्धावस्था में **परमात्मा,** औदारिकादि देह रहित तथा सिद्धि रहित केवल कर्मशरीर से युक्त विग्रहगति काल में **बाह्यात्मा** एवं देही-शरीरी अवस्था में **अन्तरात्मा** भी हैं।। १६ ।।

[१७]

अवतरणिका –

परमात्मत्वमेवाह---

मूलपद्यम् –

दर्शन-ज्ञानयोगेन, परमाऽऽत्माऽयमव्ययः।
परा क्षान्तिरहिंसा च, परमात्मा स उच्यते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'अयम्, अव्ययः, दर्शन-ज्ञानयोगेन, परमात्मा, परा, क्षान्तिः, अहिंसा, च, सः परमात्मा उच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

अयम्=प्रस्तुतो व्याख्यातो महादेवः । **अव्ययः**=न व्ययोऽव्ययः,जन्ममरणाद्यपायरहितत्त्वादविनाशी। **दर्शनज्ञानयोगेन**=दर्शनञ्च ज्ञानञ्च दर्शनज्ञाने तयोः योगः दर्शनज्ञानयोगस्तेन दर्शनज्ञानयोगेन । दर्शनं क्षायिकभावं केवलदर्शनं सामान्यज्ञानात्मकं छाद्मस्थिकं जिनेन्द्रोक्ततत्त्वार्थश्रद्धानात्मकं सम्यक्त्वञ्च, ज्ञानं क्षायिकभावं केवलज्ञानं स्याद्वादसिद्धान्तसम्मताऽनेकान्तात्मकयथावस्थितपदार्थतत्त्वज्ञानञ्च , तयोः स्वस्मिन् सम्बन्धः, आत्मनो दर्शनज्ञानात्मना परिणाम इति तत्त्वम्, तेन हेतुना । **परमात्मा**=परमो ज्ञानादिगुणोत्कर्षात् सर्वोत्कृष्टस्वरूपः आत्मा । एतेन परमत्वमात्मनोऽपि वै परमज्ञानादिगुणोत्कर्षात् । अत एवोक्तगुणसद्भावाद् जिन एव वस्तुतः परमात्मेशानः । **परा**=सर्वाधिका सर्वोत्कृष्टा च, मित्रशत्रुसाधारणत्वात् परां काष्ठामापन्नेत्यर्थः । **क्षान्तिः**=क्षमा, अन्यस्य निग्रहसामर्थ्ये सत्यपि वीतरागत्वादपराधप्रमुखसहनमित्यर्थः । अयं महादेवस्तोत्रकर्तृणा कलिकालसर्वज्ञाचार्यश्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरेण श्रीसकलाऽर्हत्स्तोत्रे यदुक्तम्---

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"कृताऽपराधेऽपि जने, कृपामन्थरतारयोः ।
ईषद्वाष्पाद्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः ।।"

अन्यत्राऽपि यद् कथितम्---

"हिंसका अप्युपकृता" चेति भावः ।

अहिंसा=न हिंसा अहिंसा, प्राणातिपातनिवृत्तिरस्ति । **चेन**=परेति सम्बध्यते । **सः**=एतादृशो देवः । **परमात्मा**=परमश्चाऽसावात्मा च परमात्मा, परमक्षान्त्यहिंसादिसद्भावात् सर्वश्रेष्ठ आत्मा च स तादृशः । **उच्यते**=वर्ण्यते कथ्यते इति । अत्र च पूर्वार्द्धेनाऽसंसार्यवस्थायामुत्तरार्द्धेन च संसार्यवस्थायां परमात्मत्वप्रतिपादने तात्पर्यमित्यपि ज्ञेयम् ।। १७ ।।

पद्यानुवाद –

दर्शन-ज्ञान सुयोग से अक्षय आत्मस्वभाव को,
प्राप्त कर परमात्मा हुए त्यजी सर्वथा विभाव को ।
ऐसे प्रभु की विश्वमहीं परमक्षमा-अहिंसा है,
इसलिये कहे जाते वे आत्मा ही परमात्मा है ।। १७ ।।

शब्दार्थ –

अयम्=यह देव । **अव्ययः**=अविनाशी, तथा **दर्शन-ज्ञानयोगेन**=सम्यग्दर्शन-ज्ञान के सम्बन्ध से । **परमात्मा**=

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोत्कृष्ट आत्मा है। तथा **क्षान्तिः**=क्षमा। **च**=और। **अहिंसा**=दया। **परा**=कभी भङ्ग नहीं होने वाली सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये **सः**=वह आत्मा ही। **परमात्मा**=परम गुणवान् होने के कारण **परमात्मा, उच्यते**=कही जाती है।

श्लोकार्थ –

महादेव जिनेश्वर भगवान अविनाशी हैं तथा दर्शन एवं ज्ञान के सम्बन्ध से सर्वोत्कृष्ट आत्मा हैं। इनके सांसारिक अवस्था में भी क्षमा और अहिंसा कभी भंग नहीं होने वाली है और सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये वह आत्मा ही परम गुणवान् **परमात्मा** कही जाती है।

भावार्थ –

यह महादेव जिनेश्वर भगवान तीर्थंकर अवस्था में सकल कर्म का क्षय हो जाने से नित्य, अनन्त दर्शन ज्ञान होने के कारण अव्यय-मुक्त, तथा जन्म-जरा-मरणादिक अपायों से रहित-अविनाशी-निर्गुण हैं। तथा सांसारिक अवस्था में क्षमा एवं अहिंसा इत्यादि गुणों के सर्वोत्कृष्ट तथा सर्व जन्तुविषयक होने के हेतु सगुण हैं। वह आत्मा ही परम-प्रकृष्ट गुणवान् आत्मा-परमात्मा कही जाती है। अर्थात् परम गुणों के होने से ही आत्मा को परमात्मा कहा जाता है ॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

"परमात्मा च बाह्यात्मा सोऽन्तरात्मा तथैव च" इति यद्प्रोक्तं तत्र विरोधं परिहरन्नेकस्याऽप्यात्मनोऽवस्थाभेदेन त्रिविधात्मत्वं प्रतिपादयन्नाह---

मूलपद्यम् –

परमात्मा सिद्धिप्राप्तौ, बाह्यात्मा तु भवान्तरे ।
अन्तरात्मा भवेद् देहे, इत्येषस्त्रिविधः शिवः ॥

अन्वयः –

'एषः शिवः सिद्धिप्राप्तौ परमात्मा भवेद्, तु भवान्तरे बाह्यात्मा, देहे अन्तरात्मा इति त्रिविधः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

एषः=प्रस्तुतो महादेवः । **शिवः**=शिवपदवाच्यमानः प्रशान्तदर्शनादिमान् वीतरागो जिनेश्वर इति । **सिद्धिप्राप्तौ** =सिद्धेः प्राप्तिः सिद्धिप्राप्तिस्तस्मिन् सिद्धिप्राप्तौ सिद्धिरात्मनः सम्बन्धेन सकलकर्मक्षये सति मुक्तिरिति, तस्याः प्राप्तौ लाभे सति, मुक्तौ प्राप्तायां सत्यामित्यर्थः । **परमात्मा** परमैः गुणैः सर्वोत्कृष्टैः गुणैः परां काष्ठामापन्नत्वाद् उत्तमोत्तमश्चाऽसावात्मा च स तादृशः । **भवेत्**=स्यात् । **तु**=

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनरर्थे । **भवान्तरे**=भवस्यान्तरो भवान्तरस्तस्मिन् भवान्तरे पूर्वदेहस्यत्यागान्तरमपरदेहग्रहणात् प्राक् च त्यक्त-ग्रहीष्यमाणभवयोरन्तरे मध्ये, विग्रहगतौ इति यावत् । **बाह्यात्मा**=बहिर्भवो बाह्यः स चासौ आत्मा च स तादृशः, विग्रहगतौ औदारिकादिदेहान्मुक्तश्च रहितत्वरूपबहिर्भावाद् आत्मनो बाह्यत्वमिति स भवान्तरे बाह्यात्मा भवेत् । तथा, **देहे**=शरीरे, देहाधिष्ठानावस्थायाम् । **अन्तरात्मा**=अन्तर्मध्ये स्थित आत्मा अन्तरात्मा भवेत् । **इति**=एवं प्रकारेण । **त्रिविधः**=एकोऽपि उपाधिभेदात् त्रिप्रकारः त्रिगुणात्मकः, भवेद् इति सम्बध्यते ।। १८ ।।

पद्यानुवाद –

प्राप्ति मुक्ति की होते ही वह आत्मा परमात्मा है ।
जाते भवान्तरे विग्रहगति में वह बाह्यात्मा है ।
तथा देह में रहता हुआ वह भी अन्तरात्मा है,
इस तरह तीन प्रकार से जग में शिव जिनात्मा है ।। १८ ।।

शब्दार्थ –

एषः=प्रस्तुत । **शिवः**=शिव-जिनेश्वर । **सिद्धि-प्राप्तौ**=मोक्ष मिल जाने पर अर्थात् मुक्त अवस्था में । **पर-मात्मा**=परमात्मा अर्थात् सर्वोत्कृष्ट आत्मा कहे जाते हैं । **तु**=तथा । **भवान्तरे**=दूसरे भव में जाते समय अर्थात् विग्रह-गतिकाल में । **बाह्यात्मा**=औदारिक आदि शरीर से बहि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूत आत्मा बाह्यात्मा कहे जाते हैं। तथा, **देहे**=देही अवस्था में। **अन्तरात्मा**=देह के मध्यवर्ती आत्मा अन्तरात्मा कहे जाते हैं, अर्थात् **भवेत्**=हैं। **इति**=इस तरह शिव-जिनेश्वर देवत्व। **त्रिविधः**=तीन प्रकार के हैं। ये ही त्रिगुणात्मक शिव हैं। त्र्यंबक भी कहते है।

श्लोकार्थ –

जब सिद्धि-मोक्ष की प्राप्ति हो जाय तब आत्मा परमात्मा कही जाती है, भवान्तर में बाह्यात्मा कही जाती है तथा देही-शरीर में अन्तरात्मा कही जाती है। इस तरह तीन प्रकार के शिव-जिनेश्वर देव हैं।

भावार्थ –

शास्त्र में तीन प्रकार की आत्मा प्रतिपादित की गई है। परमात्मा, बाह्यात्मा और अन्तरात्मा। प्रशान्त दर्शन आदि गुणों से समलंकृत शिव-जिनेश्वर देव ही परमात्मा, बाह्यात्मा एवं अन्तरात्मा इन तीन प्रकार से युक्त हैं अर्थात् **त्र्यंबक** हैं। **परमात्मा**—मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर अर्थात् मुक्त अवस्था में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त चारित्र तथा अनन्त वीर्य आदि गुणों की सिद्धि होने से वह आत्मा परमात्मा कही जाती है। मुक्ति की प्राप्ति से पूर्व भवावस्था में जन्म ग्रहण करने के लिये पूर्व भव छोड़ कर जिनेश्वर तीर्थंकर की आत्मा परभव ग्रहण करने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये जब विग्रह गति में रहती है, तब वह बाह्यात्मा कही जाती है। एवं जन्म-ग्रहण के पश्चात् देह में रहने वाली आत्मा अन्तरात्मा कही जाती है। इस तरह शिव-जिनेश्वरत्व तीन प्रकार से है ।। १८ ।।

[१९]

अवतरणिका –

महादेव-जिनेश्वरस्य सकलत्वादिकमप्याह---

मूलपद्यम् –

सकलो दोषसम्पूर्णो, निष्कलो दोषवर्जितः ।
पञ्चदेहविनिर्मुक्तः, सम्प्राप्तः परमं पदम् ।।

अन्वयः –

'दोषसम्पूर्णः, सकलः, दोषवर्जितः, पञ्चदेहविनिर्मुक्तः, परमं, पदम्, सम्प्राप्तः, निष्कलः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

सः पूर्वोक्तो महादेवः जिनेश्वर इति प्रस्तावाद् लभ्यते । **दोषसम्पूर्णः**=दोषैः सम्पूर्णः दोषसम्पूर्णः, दोषैः जन्म-जरा-मरणादिभिः दूषणैः सम्पूर्णः परिपूर्णोऽविकलः सन्, संसारस्थतादशायां हि जिनेश्वरात्मनोऽपि ते सर्वे दोषाः राग-द्वेषादयोऽपि च चरमादन्यस्मिन् भवे इति तदा स दोष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्णः दोषपरिपूर्णः । अत एव, **सकलः**=कलाभिः भवावस्थाभाविगुणैः सहितः सकलः । आत्मा हि धृतशरीराद्युपाधिः सगुणः सकल इति वा व्यवह्रियते स्मर्यते इति बोध्यम् । **दोषवर्जितः**=दोषैः वर्जितः दोषवर्जितः, जन्म-जरा-मरणादिरूपैः दोषैः विनिर्मुक्तः, अनन्तकेवलदर्शनज्ञान-चारित्रादिगुणसद्भावादिति अजं ज्ञेयम् । निर्दोष इत्यर्थः । अत एव, **पञ्चदेहविनिर्मुक्तः**=पञ्चदेहैर्विनिर्मुक्तः पञ्चदेहविनिर्मुक्तः, सकलैःपञ्चसङ्ख्यकैः औदारिकाऽऽहारकवैक्रिय-तैजस-कार्मणाख्यातैः तैः निखिलकर्मक्षयान्मूलाऽभावाद् विनिर्मुक्तः विशेषेण निर्मुक्तो रहितः, अर्थात् मुक्तस्वरूप इति यावत् । आत्ममुक्ति विना नहि औदारिकादिपञ्च-शरीरराहित्यमिति बोध्यम् । अत एव च, **परमं**=सर्वोत्तमं । **पदम्**=स्थानम्, सिद्धस्थानं सिद्धशिलाख्यं स्थानमित्यर्थः । **सम्प्राप्तः**=अधिष्ठितः, स तादृशः सन् । **निष्कलः**=भव-सम्बन्धिसमस्तदोषरहितत्वात् कलाभ्यः उक्तप्रकाराभ्यो निर्गतो निष्कलः । निखिललौकिकोपाधिरहित आत्मा निष्कलो महादेव-जिनेश्वरो अनन्तदर्शनज्ञानचारित्रवीर्यादि-सद्भावाच्च निर्दोषोऽर्हत् इति भावः । एवञ्चाऽस्य सकलत्वादिकं युक्तियुक्तमिति बोध्यम्। पारमार्थिकं सकलत्वादिकं महादेव-जिनेश्वरस्यैवेति तत्त्वं ज्ञेयम् ।। १९ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

जिस अवस्था दोषित है वह सकल अवस्था जाणना ,
तथा दोषरहित निष्कल अवस्था वह सत्य मानना ।
निज पंच देह से रहित होते परमपदस्थितदशा ,
की प्राप्त वीतराग देव ने ही न अन्ये वह दशा ।। १६ ।।

शब्दार्थ –

दोषसम्पूर्णः=कर्मजनित जन्मादि दोषों से सम्पूर्ण (सहित) होने पर। **सकलः**=भवावस्था में होने वाले दोषों से युक्त सकल हैं। **दोषवर्जितः**=उक्त प्रकार के राग-द्वेषादि दोषों से रहित होने पर मुक्तावस्था में। **पञ्चदेहविनिर्मुक्तः**=औदारिकादि पांच देह-शरीरों से रहित, तथा **परमं**=सर्वोच्च मुक्तिस्थानरूप। **पदम्**=पद को अर्थात् परमपद को। **सम्प्राप्तः**=प्राप्त करने पर। **निष्कलः**=उक्त प्रकार की कर्मकला से रहित हैं।

श्लोकार्थ –

जो कर्म-जन्म-मरणादि कला से युक्त है वह दोषों से सम्पूर्ण भरा हुआ है, और जो कर्म-कला से रहित है वह दोषरहित अर्थात् सर्वथा निर्दोष है। शिव महादेव जिनेश्वर भगवान तो औदारिकादि पांचों देह-शरीरों से सर्वथा मुक्त होकर परमपद को यानी सिद्धिपद-मोक्ष स्थान को प्राप्त कर चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

यही महादेव जिनेश्वरत्व से भगवान सांसारिक अवस्था में कर्मरूप दोष से युक्त रहते हैं, इसलिये उस अवस्था में वे **सकल** कर्म कला से युक्त हैं। तथा सर्वोच्च चारित्र पालन आदि के प्रभाव से उक्त दोषों से रहित होने पर उन दोषों के हेतु औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस तथा कार्मण-इन पांच शरीरों से मुक्त होकर परमपद-मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, इसलिये उस अवस्था में **निष्कल** अर्थात् कर्म कला से रहित हैं। अर्थात् सादि अनंत स्थिति रूप मोक्ष के शाश्वत-अविनाशी सच्चे सुख को पाकर उनमें ही वीतराग जिनेश्वर शिव सदा मग्न-लीन हैं। वे कर्म की कला से सर्वथा रहित हैं ॥ १९ ॥

[२०]

अवतरणिका –

अन्येष्टदेवस्य "एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः" इति कथनरूपा प्रशस्तिः। सा जिनेश्वरदेवस्यैवोपपद्यते इत्याह---

मूलपद्यम् –

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
त एव च पुनरुक्ता, ज्ञान-चारित्र-दर्शनात् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः —

'एकमूर्त्तिः, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः, त्रयः, भागाः, च, ते, एव, ज्ञान-चारित्र-दर्शनात्, पुनरुक्ताः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका —

एकमूर्त्तिः=एका मूर्तिर्यस्य सः एकमूर्तिः, एकाऽद्वितीयाऽसहाया वा मूर्तिः आकृतिः, ततश्चैका जिनाकृतिरेवेत्यर्थः । **ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः**=ब्रह्मा च विष्णुश्च महेश्वरश्च ते ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः । "ब्रह्माऽऽत्मभूः सुरज्येष्ठः" इति, "विष्णुर्नारायणः कृष्णः" इति, "शिवः शूली महेश्वरः" इति चाऽमरः । **त्रयः**=त्रित्वसङ्ख्या विशिष्टाः । **भागाः**= अंशाः, एको ब्रह्माऽऽत्मना एव एको विष्णुरपि आत्मना एव तथा एको महेश्वराऽऽत्मना एव च, त्रयोंऽऽशा इति पौराणिकाः । **ते च**=त्रयोऽपि अंशा जिनात्मनि एवाऽपि वर्त्तते एव, न त्वन्ये । केन प्रकारेण जिनात्मनि वर्त्तते एव ? **ज्ञान-चारित्र-दर्शनात्**=ज्ञानं च चारित्रं च दर्शनं च ज्ञानचारित्र-दर्शनं तस्माद् ज्ञानचारित्रदर्शनात्, ज्ञानं केवलज्ञानं, चारित्रं क्षायिकं, दर्शनं केवलदर्शनम्, ततः तदपेक्ष्येत्यर्थः । **च**= समुच्चये । **पुनरुक्ता**=पुनः प्रतिपादिताः, भवन्तीति शेषः । अर्थात्-ब्रह्मादिशब्दैः ये भागा उच्यन्ते त एव ज्ञान-चारित्र-दर्शनशब्दैरपीत्युक्ता अपि पुनरुच्यन्ते । ज्ञानादिरूपा एवाऽर्हतो महादेवात्मनो भागाः ब्रह्मादयो नाऽन्ये, ब्रह्मादिशब्दैः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानादय एवेहेष्टा इति । तस्माद् वीतरागो जिनेश्वरोऽर्हन्नेव त्र्यात्मको वर्तते । न त्वन्योऽपि ॥ २० ॥

पद्यानुवाद –

है एक मूर्त्ति फिर भी ये पर्याय से त्रिमूर्त्ति है ,
वे आत्म के ज्ञान दर्शन चरण गुण से ही कथित हैं ।
जिससे वही ब्रह्मा विष्णु महेश रूप त्रिमूर्त्ति है ,
उपमा घटित ये सत्य ही सच्चे जिन महादेव हैं ॥ २० ॥

शब्दार्थ –

एकमूर्त्तिः=मूर्त्तिरूप देह-व्यक्ति से एक है, और **ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः**=ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर इन नामों के । **त्रयः**=तीन । **भागाः**=अंश-पर्याय है । **च**= तथा । **ते**=वे तीनों अंश-भाग । **एव**=ही । **ज्ञान-चारित्र-दर्शनात्**=ज्ञान, चारित्र तथा दर्शन शब्दों से क्रमशः **पुनरुक्ताः**=फिर से अर्थात् शब्दान्तर से कहे गये हैं ।

भावार्थ –

वीतराग जिनेश्वर ऐसे महादेव रूपी एक **मूर्त्ति हैं,** तथा उनके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन नामों के तीन अंश-पर्याय हैं । वे तीनों अंश-पर्याय ही ज्ञान, चारित्र तथा दर्शन शब्दों से कहे गये हैं । अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश, एवं ज्ञान-चारित्र-दर्शन ये शब्द क्रमशः पर्याय रूप में हैं । इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह इतर दर्शन में **'एक मूर्त्ति तीन भाग'** जो कहे हैं, वह भी वीतराग जिनेश्वर देव ही हैं जिसका वर्णन आगे किया है ।। २० ।।

[२१]

अवतरणिका –

एकस्या मूर्त्तेरेव तिस्रो ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः व्यक्तयो भागा इत्येवं तेषामाशय इति चेत्, अनुपपद्यमानत्वान्न तत्र रुचिरित्यतोऽनुपपत्तिमुपपादयन् आह–

मूलपद्यम् –

एकमूर्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
परस्परं विभिन्नानामेकमूर्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'एकमूर्त्तिः, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः, त्रयः, भागाः, परस्परं, विभिन्नानाम्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत्' इत्यन्वय ।

मनोहरा टीका –

एकमूर्त्तिः=एका च एषा या मूर्त्तिः एकमूर्त्तिः अद्वितीयाऽसहाया, केवला वा "मूर्त्तिमत्करणमूर्तयो वेरसंहननदेहसञ्चरा" इति हैमः । "एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा" इति विश्वकोशेऽपि कथितम् । **त्रयः**=त्रित्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्ख्याविशिष्टाः । **ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः**=ब्रह्मा नाम, विष्णु नाम, महेश्वरनामाऽपि तिस्रो व्यक्तयः । **भागाः**= अंशाः, कथिता अन्यैरिति । अस्मिन् विषयेऽत्र प्रतिपत्तिमाह-- **परस्परं**=अन्योऽन्यम् । **विभिन्नानां**=भेदवताम्, लक्षणभेदाद् यो ब्रह्मा स एव विष्णुः स एव महेश्वरो वा कथनत्रयस्वारस्याच्च न घटते । तस्माद् ते परस्परं भिन्ना एवेति तादृशानां तेषामित्यर्थः । **एकमूर्त्तिः**=एकाऽभिन्ना या मूर्त्तिः कायः, सा । **कथं**=केन प्रकारेण । **भवेत्** ?=स्यादिति, काक्वा नैव भवेतित्यर्थः । एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? अभिन्ना या मूर्त्तिः कथं भिन्ना भवेत् ? परिहारार्थं ज्ञान-चारित्र-दर्शनस्वरूपसमुच्चयात्मकं एकं रूपं वा मूर्त्तिः वीतरागस्य श्रीजिनेश्वरदेवस्य वर्त्तते । तस्माद् ज्ञानचारित्रदर्शनादेका-व्यक्तिस्त्रयो-भागा इत्येव श्रद्धेयमिति भावः ।। २१ ।।

पद्यानुवाद –

ब्रह्मा-विष्णु-महेश एक मूर्त्ति के तीनों अंश हैं ,
नहीं घटे एक मूर्त्ति में परस्पर ही ये भिन्न हैं ।
वे तीन की मूर्त्ति यथाविध कभी एक न होती है ,
इसलिये वह 'एक मूर्त्तिः कथं भवेत्' कहते ही हैं ।।२१।।

शब्दार्थ –

एकमूर्त्तिः=एक मूर्त्ति । और **ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः**= ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर ये । **त्रयः**=तीन । **भागाः**=अंश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भाग) हैं। किन्तु, **परस्परं**=परस्पर यानी एक दूसरे से। **विभिन्नानाम्**=विभिन्न अर्थात् भिन्न स्वरूप देह वालों की। **एकमूर्त्तिः**=एक मूर्ति यानी एक काया। **कथं**=कैसे। **भवेत् ?**=हो सकती है। अर्थात्--परस्पर एक दूसरे से भिन्न शरीर वालों की तीन मूर्तियाँ जुदी-जुदी होंगी, एक तो नहीं।

श्लोकार्थ –

जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर एक मूर्त्ति के तीन अंश हैं, तो एक दूसरे से भिन्न की एक मूर्त्ति किस तरह हो सके ? अर्थात् न हो सके।

भावार्थ –

अन्य मत वालों का यह कथन है कि--ब्रह्मरूप एक व्यक्ति के ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों अंश-भाग हैं। यहाँ यह प्रशन होता है कि--ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर ये तीनों परस्पर भिन्न स्वरूप वाले हैं। इसलिये इन तीनों की एक मूर्त्ति या एक मूर्त्ति के ये तीनों अंश-विभाग किस तरह हो सकते हैं। एक मूर्त्ति के तीन अवयव तो हो सकते हैं, किन्तु पृथग् रही हुई तीन सावयव मूर्त्तियाँ एक में तथा एक सावयव मूर्त्ति तीन सावयव मूर्त्तियों में कैसे सम्भव है ? अर्थात्--पृथग् रही हुई तीन मूर्त्तियाँ एक मूर्त्ति या एक मूर्त्ति के अंश-भागरूप तीन मूर्त्तियाँ नहीं हो सकती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये कहा जाता है कि--'एक मूर्त्ति कथं भवेत् ?' ।। २१ ।।

[२२]

अवतरणिका –

ननु एकस्या एव व्यक्तेस्तानि अनेकाऽभिधानानि, नैव परस्परं विभिन्नास्तिस्रो व्यक्तयो ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरास्तद-समञ्जसमित्याह--

मूलपद्यम्--

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा, कारणं तु महेश्वरः ।
कार्य-कारणसम्पन्ना, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥

अन्वयः –

'विष्णुः कार्यं ब्रह्मा क्रिया तु महेश्वरः कारणं कार्य-कारणसम्पन्नाः एकमूर्त्तिः कथं भवेत्' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

विष्णुः=विष्णुपदवाच्यो देवः । **कार्यं**=क्रियाजन्य-फलाश्रयः । **ब्रह्मा**=ब्रह्मपदवाच्यो देवः । **क्रिया**=व्यापार-स्थानीयः । **तु**=विशेषे भेदे च । **महेश्वरः**=महेश्वर (महेश)--पदवाच्यो देवः । **कारणं**=जनकस्थानीयः । महे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वरस्य प्रेरणया ब्रह्मणः शरीराद् विष्णोः समुत्पन्न इति पौराणिककथाऽनुसारेण इत्थमुक्तिरिति ध्येयम् । **कार्य-कारणसम्पन्नाः**=कार्यकारणभावं हेतुपरिणामत्वभावमापन्नास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराख्यास्त्रयः । **एकमूर्त्तिः**=एकैव मूर्त्याँ तनु भावेन एकत्वेन अभिन्नतनुः । **कथं भवेत् ?**=केन प्रकारेण सम्भवेत् ! काक्वा नैव कथमपि भवेदित्यर्थः ।। २२ ।।

पद्यानुवाद –

विश्व के कार्यरूप विष्णु क्रियारूप ब्रह्माजी हैं,
कारण स्वरूप महेश्वर वे तीनों भिन्न देव हैं।
कार्य-कारणभाव को ही प्राप्त वे तीन मूर्त्तियां,
इक ही मूर्त्ति रूप कैसे हो सके ? घटे न युक्तियाँ ।। २२ ।।

शब्दार्थ –

विष्णुः=विष्णु नाम के देव । **कार्यं**=कार्य-फलरूप पुत्र हैं । **ब्रह्मा**=ब्रह्मा नाम के देव । **क्रिया**=क्रिया रूप द्वार हैं । **तु**=तथा । **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव । **कारणं**=कारण-निमित्त हैं । इस प्रकार, **कार्यकारणसम्पन्नाः**=कार्य और कारण भाव को प्राप्त हुई तीन मूर्त्तियां । **एक-मूर्त्तिः**=एक मूर्त्ति । **कथं**=कैसे । **भवेत् ?**=हो सके ?, अर्थात् एक मूर्त्ति नहीं हो सकती ।। २२ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोकार्थ –

जो विष्णु कार्य हो, ब्रह्मा क्रिया हो और महेश्वर कारण हो, तो कार्य और कारण से बनी हुई एक ही मूर्त्ति कैसे हो सके ? अर्थात् किस तरह सम्भवे ?

भावार्थ –

लौकिक मत वाले पौराणिकों की यह मान्यता है कि महेश्वर की प्रेरणा से ब्रह्मा के शरीर से विष्णु की उत्पत्ति हुई है। ऐसी स्थिति में महेश्वर निमित्त, ब्रह्मा द्वार तथा विष्णु कार्य हुए। जैसे दण्ड निमित्त कारण है, चक्र का घूमना द्वार है और घट कार्य है। इस तरह यहां भी ये तीनों कार्यकारणभाव को प्राप्त हैं। इसलिये वे (ब्रह्मा-विष्णु-महेश की) तीन मूर्त्तियां एक मूर्त्तिरूप में अर्थात् एक मूर्त्ति कैसे हो सकती हैं ? कभी भी एक ही व्यक्ति में या एक ही वस्तु-पदार्थ में कार्यकारणभाव नहीं हो सकता, किन्तु भिन्न व्यक्तियों में या भिन्न वस्तुओं-पदार्थों में होता है। जैसे दण्ड तथा घट में। इसलिये इस श्लोक में कहा है कि–**एक मूर्त्तिः कथं भवेत् ?**' 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर' ये तीनों कार्यकारणभाव को प्राप्त हैं, तो एक-मूर्त्ति कैसे हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ॥ २२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

एकस्या एव व्यक्तेरवस्थाभेदात् ते त्रयो भागा इति चेत् तदपि नेत्याह—

मूलपद्यम् –

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा, माता पद्मावती स्मृता ।
अभिजिज्जन्मनक्षत्र-मेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥

अन्वयः –

'ब्रह्मा प्रजापतिसुतः, माता पद्मावती स्मृता, जन्मनक्षत्रं अभिजित्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत्' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=ब्रह्मपदेन वाच्यो देवः । **प्रजापतिसुतः**=प्रजायाः पतिः प्रजापतिस्तस्य सुतः प्रजापतिसुतः प्रजापतिनाम्नो द्विजस्य सुतः पुत्रः । **माता**=जनेता । **पद्मावती**=एतद् नामाख्या प्रजापतेः भार्या । **स्मृता**=प्रतिपादिता पुराणेषु आख्यातेति भावः । तथा, **जन्मनक्षत्रं**=जन्मनः नक्षत्रं जन्मनक्षत्रं यन्नक्षत्रसहिते काले ब्रह्मणो जन्म तन्नक्षत्रं । **अभिजितं**=अभिजिदाख्यम् । तदेवं स्थितौ, **एकमूर्त्तिः कथं भवेत्** ? त्रयाणामेकत्वे प्रजापतिपुत्रो ब्रह्मणोऽवतार इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषेण व्यपदेशो निर्हेतुक एव स्यादिति नैकमूर्त्तिरिति भावः।

पद्यानुवाद –

अन्य मत महीं ब्रह्मा को प्रजापतिसूनु माने है,
मानी मैया उनकी जो पद्मावती ही नामे है।
जन्म नक्षत्र उनका भी अभिजित् नामका कहा है,
इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे ही हो सकती है॥ २३॥

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव। **प्रजापतिपुत्रः**=प्रजापति द्विज के पुत्र हैं। तथा, **माता**=ब्रह्मा की मैया-माता। **पद्मावती**=पद्मावती नाम की। **स्मृता**=कही गयी हैं। एवं, **जन्मनक्षत्र**=ब्रह्मा के जन्म समय का नक्षत्र। **अभिजित्**= अभिजित् नाम का है। इसलिये इन तीनों की **एकमूर्त्तिः कथं भवेत्?**=एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा प्रजापति के पुत्र हैं और उनकी मैया-माता पद्मावती के नाम से कही गयी हैं, तथा उनका जन्म नक्षत्र भी अभिजित् है। इसलिये इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सके? अर्थात् न हो सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ –

[पुराण में प्रजापति के पुत्र को ब्रह्मा का अवतार कहा है। तदनुसार यहां माता-पितादि का उल्लेख इस तरह है।] ब्रह्मा प्रजापति द्विज के पुत्र हैं, उनकी माता का नाम पद्मावती है। तथा ब्रह्मा का जन्मनक्षत्र अभिजित् है। इसलिये ऐसी परिस्थिति में इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? एक मूर्त्ति के ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के सूचक ये नाम हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कारण कि इन तीनों के माता, पिता और जन्मनक्षत्र भिन्न-भिन्न नाम के हैं। एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न माता-पिता तथा जन्मनक्षत्र नहीं होते हैं। इसलिये ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश एक मूर्त्ति के तीन विभाग नहीं हैं। इसलिये कहा है कि 'एकमूर्त्तिः कथं भवेत्' ।। २३ ।।

[२४]

अवतरणिका –

त्रिविभागैकैव मूर्त्तिर्जाता इति चेत् तदपि नेत्याह–

मूलपद्यम् –

वसुदेवसुतो विष्णु-, र्माता च देवकी स्मृता ।
रोहिणी जन्मनक्षत्र-मेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'विष्णुः वसुदेवसुतः, माता च देवकी स्मृता, जन्मनक्षत्रं रोहिणी, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

विष्णुः=विष्णुपदवाच्यो देवः । **वसुदेवसुतः**=वसुदेवस्य सुतः वसुदेवसुतः वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः वसुदेवाख्यनृपपुत्रः । **माता**=जनेता । **च**=समुच्चये । विष्णोरिति प्रत्यासत्त्या प्राप्यते । **देवकी**=तद् नामाख्या वसुदेवनृपभार्या । **स्मृता**=कथिता । **जन्मनक्षत्रम्**=जन्मकाले यन्नक्षत्रागतं तत् । **रोहिणी**=तदभिधेयं नक्षत्रं अर्थात् तदाख्यम् । वसुदेवराज्ञः महिष्याः देवक्याः कुक्षेर्विष्णुः कृष्णनाम्नाऽवततार । एवं स्थिते, **एकमूर्त्तिः कथं भवेत्** ? नैव भवेदित्यर्थः । येषां हि मात्रादयो भिन्नाः, तेषां त्रिविभागैकमूर्त्तिस्वरूपेण जन्मेति विरुद्धम् । न एकस्या एव मूर्त्तेरनेकत्र जन्म, जातस्य पुनर्जननाऽभावादृते मरणम् । नैकस्यैव मरणानन्तरं तत्र जन्म, तथा सति विष्णोरयमवतार इति विशेषेण रूपेण व्यपदेशस्य मूलरहित्वापत्तेरिति भावः ।। २४ ।।

पद्यानुवाद –

वसुदेवनृपति के नंदन विष्णु-कृष्ण को माने है ,
मात्री मैया उनकी जो ख्यात देवकी नामे है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म नक्षत्र उनका भी रोहिणी कहा जाता है,
इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो हो सकती है ? ।। २४ ।।

शब्दार्थ –

विष्णुः=विष्णु (कृष्ण) नाम के देव। **वसुदेवसुतः** =वसुदेव राजा के पुत्र हैं। **च**=तथा। **माता**=विष्णु (कृष्ण) की माता। **देवकी**=देवकी नाम की। **स्मृता**= कही है। **जन्मनक्षत्रं**=विष्णु (कृष्ण) के जन्म समय का नक्षत्र। **रोहिणी**=रोहिणी नाम का है। ऐसी स्थिति में, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति। **कथं**=कैसे। **भवेत्** ?=हो सकती है ?

श्लोकार्थ –

विष्णु (कृष्ण) वसुदेव राजा के पुत्र हैं और उनकी माता देवकी है तथा उनका जन्म नक्षत्र रोहिणी माना गया है। ऐसी स्थिति में इन तीनों की एक मूर्त्ति या एक मूर्त्ति के ये तीनों भाग कैसे हो सकते हैं ?

भावार्थ –

[पुराण में कृष्ण को विष्णु का अवतार कहा है, तदनुसार यहां माता-पितादि का उल्लेख इस तरह है।] **'विष्णु'** वसुदेव राजा के पुत्र हैं। उनकी माता का नाम **'देवकी'** है, तथा उनका जन्मनक्षत्र **'रोहिणी'** है। ऐसी स्थिति में इसलिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है कि–"**एकमूर्त्तिः कथं भवेत्**?' अर्थात् एकमूर्त्ति के तीन विभाग कैसे हो सकते हैं ? न हो सके। कारण कि एक ही व्यक्ति के अनेक माता-पिता नहीं हो सकते। इसलिये एक मूर्त्ति के तीन विभाग कहना सुसंगत नहीं है।

[२५]

अवतरणिका –

न हि केवलं ब्रह्म-विष्णवोरेव मात्रादिभेदोऽपि तथा महेशस्याऽपीत्याह–

मूलपद्यम् –

पेढालस्य सुतो रुद्रो, माता च सत्यकी स्मृता।
मूलं च जन्मनक्षत्र-मेकमूर्तिः कथं भवेत्?

अन्वयः –

'रुद्रः पेढालस्य सुतः च माता सत्यकी स्मृता च जन्मनक्षत्रं मूलं एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

रुद्रः=रुद्राख्याऽपरनाम्ना महेश्वरः [महादेवः]। **पेढालस्य**=पेढालाख्यस्य द्विजस्य। **सुतः**=सूनुः, आख्यायते पुराणेषु तस्य **माता**=जननी, रुद्रस्येति बोध्यम्। **च**=समुच्चये। **सत्यकी**=तदाख्या जननी पेढालद्विजस्य पत्नी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मृता=वर्णिता। **च**=तस्य रुद्रस्य **जन्मनक्षत्रं**=यन्नक्षत्रयुक्ते काले रुद्रस्य जन्म तन्नक्षत्रं भम्। **मूलं**=मूलाख्यं नक्षत्रम्। तदेवं स्थिते, **एकमूर्त्तिः**=अभिन्नतनुः। **कथं भवेत्?**= काक्वा नैव कथमपि भवेदित्यर्थः। विभिन्नमात्रादिभावाद् विभिन्नमूर्त्तय एव ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः, न त्वेकमूर्त्तिरिति ॥ २५ ॥

पद्यानुवाद –

पेढालद्विज के नन्दन रुद्र-महेश्वर माने है,
मानी माता उनकी ही जास सत्यकी नामे है।
जन्म नक्षत्र उनका भी माना गया ही मूल है,
इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे ही हो सकती है?॥२५॥

शब्दार्थ –

रुद्रः=रुद्र (महेश्वर)। **पेढालस्य**=पेढाल नामक द्विज के। **सुतः**=पुत्र हैं। **च**=तथा। **माता**=जनेता रुद्र की माता। **सत्यकी**=सत्यकी नाम की। **स्मृता**=कही है। **च**= तथा, **जन्मनक्षत्रं**=जन्म का नक्षत्र। **मूलं**=मूल है। ऐसी स्थिति में **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्तिः। **कथं**=कैसे। **भवेत्?**= हो सकती है?

श्लोकार्थ –

रुद्र (महादेव) पेढाल द्विज के पुत्र हैं, उनकी माता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्यकी है, तथा उनका जन्मनक्षत्र मूल है। ऐसी स्थिति में उनकी एक मूर्त्ति किस तरह सम्भवती है?

भावार्थ –

जिनको पुराणों में महेश्वर-महादेव के अवतार कहे हैं वे पेढाल द्विज के पुत्र हैं, उनकी माता का नाम सत्यकी है, तथा उनका जन्मनक्षत्र मूल है। ऐसी स्थिति में एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब माता-पिता भिन्न-भिन्न हैं, जन्मनक्षत्र भी भिन्न हैं वहीं तीनों की [ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की] एक मूर्त्ति कैसे सम्भवती है? अर्थात् एक मूर्त्ति के माता-पिता तथा जन्म-नक्षत्र एक ही होते हैं। इसलिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर एक मूर्त्ति के तीन भाग नहीं हो सकते हैं ।। २५ ।।

[२६]

अवतरणिका –

एकस्यैव जीवस्याऽनन्तभवभ्रमणवत् एकस्यापि जन्म-भेदाद् मात्रादिभेदो नामभेदोऽपि च सम्भवत्येव। तस्माद् न मात्रादिभेदाद् एकमूर्त्तित्वहानिरेकात्माऽपेक्षया तादृशोक्ते-रिति पुनर्वर्णभेदादेकमूर्त्तित्वं विघटयन्नाह–

मूलपद्यम् –

रक्तवर्णो भवेद् ब्रह्मा, श्वेतवर्णो महेश्वरः।
कृष्णवर्णो भवेद् विष्णु-रेकमूर्त्तिः कथ भवेत्?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'ब्रह्मा रक्तवर्णः भवेत्, महेश्वरः श्वेतवर्णः, विष्णुः कृष्णवर्णः भवेत्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत्' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=ब्रह्मपदवाच्यो देवः । **रक्तवर्णः**=रक्तो लोहितो वर्णो रूपं यस्य स तादृशः । **महेश्वरः**=महेश्वरपदवाच्यो देवः, महादेवरित्यर्थः । **श्वेतवर्णः**=शुक्लवर्णः । **भवेत्**=स्यात् । **विष्णुः**=विष्णुपदवाच्यो देवः । **कृष्णवर्णः**=श्यामवर्णः । **भवेत् ।**=पुराणादौ प्रत्येकस्य वर्णभिन्नत्वं वर्णितम्, तर्हि एवं प्रत्येकं विभिन्नवर्णत्वे सति **'एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?'** अर्थात्–कथं भिन्न-भिन्न-वर्णाः एकमूर्त्तिः भवेत् ? एकवर्णैव सम्भवं कथम् ? नह्येकस्या मूर्त्तेः विभिन्नवर्णता प्रसिद्धा । एवञ्च वर्णभेदाद् मूर्त्तिभेदो निश्चित एव । अतोऽन्योक्तमनुपपन्नमिति ।। २६ ।।

पद्यानुवाद –

पुराण में ब्रह्माजी का देहवर्ण रक्त कहा है,
और महेश देव का तनुवर्ण श्वेत ही कहा है ।
तथा विष्णु देव का देहवर्ण कृष्ण कहा गया है,
इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे ही हो सकती है ?।।२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव। **रक्तवर्णः**=लाल वर्ण वाले। **भवेत्**=हैं। **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव। **श्वेत-वर्णः**=शुक्ल वर्ण वाले हैं। तथा **विष्णुः**=विष्णु नाम के देव। **कृष्णवर्णः**=श्याम वर्ण वाले। **भवेत्**=हैं। ऐसी स्थिति में, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति। **कथं**=कैसे। **भवेत्**=हो सकते हैं?

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा का रक्त (लाल) वर्ण है, महेश्वर (महेश) का श्वेत (सफेद) वर्ण है और विष्णु का कृष्ण (श्याम) वर्ण है। इसलिये ऐसी स्थिति में इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है?

भावार्थ –

पुराणों में तीनों देवों का देहवर्ण भिन्न-भिन्न कहा है। जैसे ब्रह्मा का देहवर्ण रक्त (लाल) कहा गया है, महेश्वर (महेश) का देहवर्ण श्वेत (सफेद) कहा गया है तथा विष्णु का देहवर्ण कृष्ण (श्याम) कहा गया है। जबकि एक मूर्त्ति की कान्ति एक ही वर्ण की होती है, अनेक प्रकार की नहीं। इसलिये भिन्न-भिन्न वर्ण के कारण तीनों देव भिन्न ही हैं। उन तीनों देवों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? ॥ २६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

चिह्नभेदेनैकमूर्त्तित्वाऽनुपपत्तिमाह–

मूलपद्यम् –

अक्षसूत्री भवेद् ब्रह्मा, द्वितीयः शूलधारकः।
तृतीय शङ्खचक्राङ्क, एकमूर्त्तिः कथं भवेत्?

अन्वयः –

'ब्रह्मा अक्षसूत्री भवेत्, द्वितीयः शूलधारकः, तृतीयः शङ्खचक्राङ्कः, एकमूर्त्तिः कथं भवेत्?' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=ब्रह्मपदवाच्यो देवः। **अक्षसूत्री**=अक्षं सूत्रं यस्याऽस्ति सोऽक्षसूत्री। अक्षं पद्माक्षादि तन्निर्मितं सूत्रं माल्यमस्त्यस्य लक्षणमिति स तादृशोऽक्षसूत्री, अक्षसूत्राङ्क इत्यर्थः। **भवेत्**=स्यात्। **द्वितीयः**=महेश्वरनामको देवः, तस्य च पूर्वश्लोककथितक्रमाऽपेक्षया द्वितीयत्वमित्यवधेयम्। **शूलधारकः**=शूलस्य धारकः शूलधारकः। **शूलस्य**=शूलविशेषशस्त्रस्य **धारकः**=धारयति यो धारकः, शूलाङ्क इत्यर्थः। तस्याऽपि विष्णोश्च पूर्वश्लोकोक्तक्रमाऽपेक्षया तृतीयत्वमित्यवधेयम्। तस्माद् कथितः **तृतीयः**=विष्णुः। **शङ्ख-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्राङ्कः=शङ्खश्चक्रं चाऽङ्कौ चिह्ने यस्य सः शङ्खचक्राङ्कः शङ्खं चक्राञ्च चिह्नितः देवः। एवं प्रत्येकमङ्कभेदे सति, **एकमूर्त्तिः कथं भवेत** ? एकमूर्त्तिः केन प्रकारेण स्यात् ? काक्वा नैव स्यादित्यर्थः। नैकस्या मूर्त्तेर्विभिन्नं चिह्नं प्रख्यातमिति चिह्नभेदाद् विभिन्नैव मूर्त्तिर्ब्रह्मादिनां, एकस्यैवाऽनेकचिह्नत्वे जगज्जनानां परिचयव्यामोहापत्तेश्चेति ॥ २७ ॥

पद्यानुवाद --

अक्षसूत्र को ब्रह्माजी धारण करने वाले हैं,
तथा महेश त्रिशूल को धारण करने वाले हैं।
विष्णु भी शंख और चक्र धारण करने वाले हैं,
इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे ही हो सकती है ॥२७॥

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव। **अक्षसूत्री**=अक्षसूत्र (माला) को धारण करने वाले। **भवेत्**=हैं। **द्वितीयः**=दूसरे (महेश्वर नाम के देव)। **शूलधारकः**=त्रिशूल को धारण करने वाले हैं, तथा **तृतीयः**=तीसरे (विष्णु नाम के देव) **शङ्खचक्राङ्कः**=शंख और चक्र को धारण करने वाले हैं। तो, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति। **कथं**=कैसे। **भवेत् ?**=हो सकती है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोकार्थं –

ब्रह्मा अक्षसूत्र (माला) को धारण करने वाले हैं, दूसरे (महेश्वर) त्रिशूल को धारण करने वाले हैं तथा तीसरे (विष्णु) शंख-चक्र को धारण करने वाले हैं। ऐसी स्थिति में एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है।

भावार्थ –

पुराणों में ब्रह्मा, महेश्वर और विष्णु के लांछन-चिह्न भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिपादित किये हैं। जैसे ब्रह्मा का लांछन-चिह्न **अक्षसूत्र** है, अर्थात् ब्रह्माजी अक्षसूत्र (माला) को धारण करने वाले हैं। महेश्वर का लांछन-चिह्न **त्रिशूल** है, अर्थात् महेश्वर (महेश-शंकर) त्रिशूल को धारण करने वाले हैं। तथा विष्णु का लांछन-चिह्न शंख-चक्र है, अर्थात् विष्णु शंख और चक्र को धारण करने वाले हैं। इसलिये लांछन-चिह्न भिन्न-भिन्न होने से उक्त तीनों देवों की एक मूर्त्ति नहीं हो सकती है। ऐसी स्थिति में कहा है कि 'एक मूर्त्तिः कथं भवेत् ?' एक मूर्त्ति कैसे हो सके ? अर्थात् न हो सके ॥ २७ ॥

[२८]

अवतरणिका –

चिह्नभेदेन भिन्नमूर्त्तित्वं समर्थ्य मुखाद्यङ्गवैलक्षण्येनाऽपि तदुपपादयन्नाह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

चतुर्मुखो भवेद् ब्रह्मा, त्रिनेत्रोऽथ महेश्वरः ।
चतुर्भुजो भवेद् विष्णु-रेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'ब्रह्मा चतुर्मुखः भवेद्, अथ महेश्वरः त्रिनेत्रः, विष्णुः चतुर्भुजः भवेत्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=ब्रह्मपदवाच्यो देवः । **चतुर्मुखः**=चत्वारि मुखानि वर्त्तन्ते यस्य स तादृशः । **भवेत्**=स्यात् । **अथ**=तथा । **महेश्वरः**=महान् चाऽसौ ईश्वरः महेश्वरः महेश्वर-पदवाच्यो देवः महादेवः **त्रिनेत्रः**=त्रीणि त्रित्व विशिष्टानि नेत्राणि, द्वे तु यथास्थाने एकं ललाटस्थमित्येवं यस्य स तादृशः । **भवेत्**=स्यात् । **विष्णुः**=विष्णुपदवाच्यो देवः । **चतुर्भुजः**=चत्वारो भुजा यस्य स तादृशः । चतुर्भुजत्वं त्रयाणामेव पुराणादौ कथितमिति न तावतेह वैलक्षण्यं साध्यम् । एवमवयववैलक्षण्ये सति, **एकमूर्त्तिः कथं भवेत्** ? न तु त्रिनेत्रश्चतुर्भुजश्चेति नैकमूर्त्तिस्ते इति भावः ।। २८ ।।

पद्यानुवाद –

चउ मुख वाले ब्रह्माजी विश्वमहीं कहलाते हैं ,
महेश्वर भी त्रिनेत्र वाले विश्वमहीं कहलाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार भुजावंत विष्णु जी विश्वमहीं कहलाते हैं,
इन तीनों की ही एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है ? ।।२८।।

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव । **चतुर्मुखः**=चार मुख वाले । **भवेत्**=हैं । **अथ**=तथा । **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव । **त्रिनेत्रः**=तीन नेत्र वाले हैं । **विष्णुः**=विष्णु नाम के देव । **चतुर्भुजः**=चार भुजा (बाहु) वाले । **भवेत्**=हैं । ऐसी स्थिति में, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति, **कथं**=कैसे । **भवेत्**= हो सकते हैं ।

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा चार मुख वाले हैं, महेश्वर तीन नेत्र वाले हैं और विष्णु चार भुजा वाले हैं, अब इन तीनों की एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है ?

भावार्थ –

पुराणों में '**चतुर्मुखो ब्रह्मा**' कहे गये हैं, '**त्रिनेत्रो महेश्वरः**' कहे गये हैं, तथा **चतुर्भुजो विष्णुः**' कहे गये हैं । यहां जिज्ञासा से प्रश्न होता है कि–तो एक मूर्त्ति के तीन भाग कैसे हो सकते हैं? यदि मूर्त्ति एक ही माने तो ब्रह्मा को त्रिनेत्र और चतुर्भुज, महेश्वर को भी चतुर्मुख एवं चतुर्भुज, विष्णु को भी त्रिनेत्र तथा चतुर्मुख कह सकते; किन्तु ऐसा नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो सकता । इसलिये कहा है कि '**एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?**' अर्थात् इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है ? ।।२८।।

[२९]

अवतरणिका –

अत्र जन्मदेशभेदादपि भिन्नमूर्त्तित्वमाह--

मूलपद्यम् –

मथुरायां जातो ब्रह्मा, राजगृहे महेश्वरः।
द्वारामत्यामभूद् विष्णु-रेकमूर्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'ब्रह्मा मथुरायां जातः, महेश्वरः राजगृहे, विष्णुः द्वारावत्यां अभूत्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=तदाख्यो देवः । **मथुरायां**=तदाख्यायां नगर्यां । **जातः**=अवतीर्णः, उत्पन्नरित्यर्थः । **महेश्वरः**=तदाख्यो देवः । **राजगृहे**=तदाख्यनगरे राजगृहनामकनगरे, जात इति सम्बध्यते । **विष्णुः**=तदाख्यो देवः, द्वारावत्यां (द्वारामत्यां, द्वारकायां) नगर्यां, **अभूत्**=जातः । विष्णोः स्वरूपं कृष्णः । तस्याऽपि मथुरायामेव जन्म, जरासन्धभूपतिभयात् ततः पलायित्वा पश्चिमसमुद्रतटे द्वारावतीं नगरीं निर्माय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र निवासं कुर्यात् इति पुराणादौ कथितम् । एवं जन्म-देशभेदे सति, '**एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?**' नैकस्या एव मूर्त्तेर-नेकदेशे जन्मेति नैकमूर्त्तिः ।। २६ ।।

पद्यानुवाद –

विश्व में मथुरापुरी में जन्म ब्रह्मा का हुआ है ,
तथा राजगृहीपुरी में जन्म महेश का हुआ है ।
विष्णुजी का वासादि भी द्वारामती में हुआ है ,
इन तीनों की ही एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है ।। २६ ।।

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव । **मथुरायां**=मथुरा नाम की नगरी में । **जातः**=उत्पन्न हुए हैं । **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव । **राजगृहे**=राजगृही नाम की नगरी में उत्पन्न हुए हैं । **विष्णु**=विष्णु नाम के देव । **द्वारावत्याम्**=द्वारावती-द्वारामती-द्वारका नाम की नगरी में । **अभूत्**=रहने वाले हैं । ऐसी स्थिति में, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति, **कथं**=कैसे । **भवेत्**=हो सकती है ।

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा मथुरा नाम की नगरी में उत्पन्न हुए हैं । महेश्वर (महेश-शंकर) राजगृही नाम की नगरी में उत्पन्न हुए हैं । तथा विष्णु (कृष्ण) ने द्वारावती-द्वारामती-द्वारका नामकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगरी में निवासादि किया है। तो, इन तीनों की एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है ? अर्थात् न हो सके।

भावार्थ –

पुराणों में कहा है कि–ब्रह्माजी मथुरा नगरी में जन्मे हैं, महेश्वर राजगृही नगरी में जन्मे हैं, एवं विष्णु (कृष्ण) द्वारका नगरी में रहने वाले थे। तो एक मूर्त्ति इन तीनों की कैसे हो सकती है ? भिन्न-भिन्न स्थानों में जन्म लेने वाले की मूर्त्ति भिन्न ही हो सकती है। एक नहीं हो सकती ।। २९ ।।

[३०]

अवतरणिका –

यानभेदेनाऽपि मूर्त्तिभेदमाह--

मूलपद्यम् –

हंसयानो भवेद् ब्रह्मा, वृषयानो महेश्वरः।
तार्क्ष्ययानो भवेद् विष्णु-रेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'ब्रह्मा हंसयानः भवेत्, महेश्वरः वृषयानः, विष्णुः तार्क्ष्ययानः भवेत्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=तदाख्यः । **हंसयानः**=हंसस्य यानः हंसयानः, हंसः तदाख्यः प्रसिद्धः पक्षिविशेषः एव नित्यं स एवैक यानं वाहनं यस्य स तादृशः हंसवाहनः । श्रीअभिधानचिन्तामणि-कोशे कथितमाह--"यानं युग्यं पत्रं वाह्यं वह्यं वाहनधोरणे" इति हैमः । **भवेत्**=स्यात् । **महेश्वरः**=तदाख्यः शङ्करः । **वृषयान**=वृषस्य यानः वृषयानः, वृषो नन्द्याख्यो वृषभो नित्यं यानं यस्य स तादृशो वृषवाहनः भवेदिति सम्बध्यते । श्रीअमरकोशे कथितमाह--"उक्षा भद्रो बलीवर्दः ऋषभो वृषभो वृष" इत्यमरः । तथा, **विष्णुः**=तदाख्यः । **तार्क्ष्ययानः**=तार्क्ष्यस्य यानः तार्क्ष्ययानः, तार्क्ष्यो गरुडः स एवैकं यानं यस्य स तादृशो गरुडवाहनः । **भवेत्**=स्यात् । तदेवं प्रत्येकं यानभेदे सति । **एकमूर्त्तिः**=एकाऽभिन्ना या मूर्त्तिः कायः, सा **कथं**=केन प्रकारेण । **भवेत् ?**=स्यात् ? यानभेदेन तत् तद्देवग्रहो न स्यात् । जायते च तथैवेति नैकमूर्त्तिरिति ।। ३० ।।

पद्यानुवाद –

विश्व में सदा ब्रह्माजी सुहंसवाहनवंत हैं,
और महेश्वर देव नित्य वरवृषभवाहनवंत हैं ।
तथा विष्णुदेव विश्व में शुभगरुड़वाहनवंत हैं,
इन तीनों की ही एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? ।।३०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव। **हंसयानः**=हंस वाहन वाले। **भवेत्**=हैं। **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव। **वृष-यानः**=बैल के वाहन वाले हैं। तथा, **विष्णुः**=विष्णु नाम के देव। **तार्क्ष्ययानः**=गरुड़ के वाहन वाले। **भवेत्**=हैं। तो **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति। **कथं**=कैसे। **भवेत्**=हो सकते हैं?

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा हंस वाहन वाले हैं, **महेश्वर** वृषभ वाहन वाले हैं तथा **विष्णु** गरुड़ वाहन वाले हैं। ऐसी स्थिति में इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है?

भावार्थ –

पुराणों में ब्रह्मा का वाहन हंस पक्षी, महेश्वर का वाहन बैल पशु तथा विष्णु का वाहन गरुड़ पक्षी कहा है। ऐसी स्थिति में एक मूर्त्ति के तीन विभाग कैसे हो सकते हैं? अर्थात् न हो सके। कारण कि प्रत्येक देव के पृथक्-पृथक् वर्णन ही असंगत होगा। इसलिये इन तीनों की मूर्त्ति पृथक्-पृथक् ही हैं; एक नहीं हैं॥ ३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतरणिका –

निजकरग्राह्यवस्तुभेदेन मूर्त्तिभेदमाह–

मूलपद्यम् –

पद्महस्तो भवेद् ब्रह्मा, शूलपाणिर्महेश्वरः।
चक्रपाणि र्भवेद् विष्णु-रेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'ब्रह्मा पद्महस्तः भवेत्, महेश्वरः शूलपाणिः, विष्णुः चक्रपाणिः भवेत्, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=ब्रह्मपदवाच्यो देवः। **पद्महस्तः**=पद्मं कमलं हस्ते यस्य स पद्महस्तः पद्मपाणिरित्यर्थः। नित्यकमलहस्तः ब्रह्मेतिभावः। **भवेत्**=स्यात्। **महेश्वरः**=महेश्वरपदवाच्यो देवः। **शूलपाणिः**=शूलं पाणौ यस्य सः शूलपाणिः, शूलं तदाख्यं शस्त्रं त्रिशूलं यस्य स तादृशः, भवेदिति सम्बध्यते। **विष्णुः**=विष्णुपदवाच्यो देवः। **चक्रपाणिः**=चक्रं पाणौ यस्य सः चक्रपाणिः, चक्रं सुदर्शनाख्यं चक्रमायुधं नित्यं पाणौ यस्य स तादृशः, **भवेत्**। ततश्च, **एकमूर्त्तिः**=एकाऽभिन्ना या मूर्त्तिर्देहः, सा, **कथं**=केन प्रकारेण। **भवेत्**=

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यात् ?, काक्वा नैव स्यादित्यर्थः । यद्यपि चतुर्भुजत्वात् प्रत्येकं भुजायां वस्तुभेदो नाऽयुक्तः, तथापि विवेकेन ब्रह्मादि-परिज्ञानं पद्मादिद्वारा नैव स्यात् । तदनुरोधात् पद्मादीनि भिन्नमूर्त्तिरेव विशेषणानीति नैकमूर्त्तिरिति ।। ३१ ।।

पद्यानुवाद –

ब्रह्मा सदा निज हस्त में कमलधारक प्रख्यात है ,
तथा महेश्वर निज कर में त्रिशूलधारक ख्यात है ।
विख्यात विष्णु निज कर में सुदर्शनचक्रधारक है ,
इन तीनों की ही एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है ।। ३१ ।।

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मा नाम के देव । **पद्महस्तः**=कमल हाथ में धारण करने वाले । **भवेत्**=हैं । **महेश्वरः**=महेश्वर नाम के देव । **शूलपाणिः**=त्रिशूल धारण करने वाले हैं । तथा, **विष्णु**=विष्णु नाम के देव । **चक्रपाणिः**=सुदर्शनचक्र धारण करने वाले । **भवेत्**=हैं । तो, **एकमूर्त्तिः**=एकमूर्त्ति । **कथं**=कैसे । **भवेत् ?**=हो सकते हैं ?

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा अपने हाथ में कमल धारण करने वाले हैं । महेश्वर अपने हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले हैं तथा विष्णु अपने हाथ में सुदर्शनचक्र धारण करने वाले हैं । तो, इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है।

भावार्थ –

पुराण के अनुसार ब्रह्माजी अपने हस्त में सदा कमल धारण करने वाले, महेश्वर यानी शंकर अपनी हाथ में सदा त्रिशूल धारण करने वाले तथा विष्णु याने कृष्ण अपने कर में सदा सुदर्शनचक्र धारण करने वाले कहे गये हैं। तो इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? पद्महस्त कहने से केवल ब्रह्माजी का बोध होता है शूलपाणि कहने से केवल महेश्वर-शंकर का बोध होता है, और चक्रपाणि कहने से केवल विष्णु-कृष्ण का बोध होता है। इस तरह विभिन्न अभिन्न का बोध कैसे कराते है? अतः एक मूर्त्ति कैसे होगी? यदि एक मूर्त्ति हो तो ब्रह्माजी को चक्रपाणि, महेश्वर-शंकर को पद्महस्त और विष्णु-कृष्ण को शूलपाणि कहा जा सकता हैं। किन्तु ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता है। इसलिये इन तीनों देवों की एक मूर्त्ति तीन भाग नहीं है। इसलिये कहा है कि 'एकमूर्त्तिः कथं भवेत्? अर्थात् एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है? ॥ ३१ ॥

[३२]

अवतरणिका –

अथ जन्मकालभेदेनाऽपि मूर्त्तिभेदमाह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम् –

कृते जातो भवेद् ब्रह्मा, त्रेतायां च महेश्वरः।
विष्णुश्च द्वापरे जात, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?

अन्वयः –

'ब्रह्मा कृते जातः भवेत्, महेश्वरः त्रेतायां च, विष्णुः द्वापरे जातः च, एकमूर्त्ति कथं भवेत् ?' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

ब्रह्मा=तदाख्यदेवः। **कृते**=कृतयुगे, सत्ययुग इत्यर्थः। आख्यातेषु युगचतुष्टय सत्य-त्रेता-द्वापर-कलिषु प्रथमे युगे इति यावत्। **जातः**=अवतीर्णः उत्पन्नरिति। **भवेत्**=स्यात्। **महेश्वरः**=तदाख्यदेवः। **त्रेतायां**=तदाख्ये द्वितीय-युगे। **च**=समुच्चये। जात इति सम्बध्यते। **विष्णुः**=तदाख्यदेवः। **द्वापरे**=तदाख्ये तृतीययुगे। **जातः**=उत्पन्नः। **च**=समुच्चये। तर्हि, **एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ?**=एकस्य चैतनस्यैकस्मिन् काले नाना शरीराऽधिष्ठान विरोधात् कार्यकारणरूपताया भेदे कथं एकमूर्त्तिः ? न क्वाऽपि। तस्मादेव कथितमाह–'एकमूर्तिः कथं भवेत् ?' ॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

विश्व में आद्य कृतयुग में उत्पन्न ब्रह्मा हुए हैं,
द्वितीय त्रेता युगमहीं महेश उत्पन्न हुए हैं।
तृतीय द्वापर युगमहीं उत्पन्न विष्णु हुए हैं,
इन तीनों की ही एकमूर्त्ति कैसे हो सकती है ।। ३२ ।।

शब्दार्थ –

ब्रह्मा=ब्रह्मानाम के देव । **कृते**=कृतयुग में । **जातः** =उत्पन्न । **भवेत्**=हुए हैं । **च**=तथा । **महेश्वरः**= महेश्वर नाम के देव । **त्रेतायां**=त्रेतायुग में उत्पन्न हुए हैं । **च**=और । **विष्णुः**=विष्णुनाम के देव । **द्वापरे**= द्वापरयुग में । **जातः**=उत्पन्न हुए हैं । तो, **एकमूर्त्तिः**= एकमूर्त्ति । **कथं**=**कैसे** भवेत् ?=हो सकते हैं ?

श्लोकार्थ –

ब्रह्मा नाम के देव कृतयुग में उत्पन्न हुए हैं, महेश्वर नाम के देव त्रेतायुग में उत्पन्न हुए हैं तथा विष्णु नाम के देव द्वापरयुग में उत्पन्न हुए हैं । तो, इन तीनों की एक मूर्त्ति कैसे हो सकती है ?

भावार्थ –

पुराणों में चार युग कहे गये हैं । [१] कृत (सत्य) युग, [२] त्रेतायुग, [३] द्वापरयुग, तथा कलियुग ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन चार युगों में पहले कृत (सत्य) युग में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, दूसरे त्रेता युग में महेश्वर (महेशशंकर) उत्पन्न हुए हैं, तीसरे द्वापर युग में विष्णु (कृष्ण) उत्पन्न हुए हैं। अब ऐसी परिस्थिति में ये तीनों देव की एक मूर्त्ति कैसे हो सकते हैं? जन्मकाल भेद से इन तीनों का एकमूर्त्ति होना कैसे सम्भव है? एकमूर्त्ति मानने से एक देव का अवतार (जन्म) दूसरे देव का अवतार (जन्म) भी माना जायगा। किन्तु ऐसा व्यवहार नहीं होता है। एक देव का अवतार (जन्म) दूसरे देव का कभी भी नहीं कहा जाता है। इसलिये इन तीनों देवों की एकमूर्त्ति नहीं हो सकती है ।। ३२ ।।

[३३]

अवतरणिका –

तदेवमन्येष्टदेवस्य एकमूर्त्तेस्त्रिविभागत्वमसमञ्जस-मित्युपपाद्य, यद् प्रोक्तम् 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः' इति तद्विशदं विवृण्वन्नाह--

मूलपद्यम् –

ज्ञानं विष्णुः सदा प्रोक्तं, ब्रह्मा चारित्रमुच्यते।
सम्यक्त्वं तु शिवः प्रोक्त-र्महन्मूर्त्तिस्त्रयात्मिका।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'ज्ञानं सदा विष्णुः प्रोक्तं, चारित्रं ब्रह्मा उच्यते, तु सम्यक्त्वं शिवः प्रोक्तं, अर्हन्मूर्त्तिः त्रयात्मिका' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

ज्ञानं=ज्ञप्तिर्ज्ञानं सम्यग्ज्ञानं केवलज्ञानञ्च । **सदा**= सर्वदा । **विष्णुः**=विष्णुरित्येवं । **प्रोक्तं**=प्रकर्षेण उक्तं प्रोक्तं प्रतिपादितमित्यर्थः, तज्ज्ञैरिति शेषः । विश्वे व्यापकत्वात् पालकत्वाच्च विष्णुरिति कथ्यते । एतद्गुण-द्वयं च ज्ञाने वर्त्तते । पञ्चमकेवलज्ञानस्य निखिलद्रव्य पर्यायविषयत्वेन व्यापकत्वात् तथा सर्वथा समस्तकर्म क्षय-हेतुतया भवस्य भयात् पालकत्वादिति ज्ञानं विष्णुरिति प्रोक्तं वास्तविकमिति । तथा **चारित्रं**=चय-रिक्तं चारित्रं सर्वसावद्यविरतिः । **ब्रह्मा**=ब्रह्मपदवाच्यम् । **उच्यते**=कथ्यते । ब्रह्मा हि ब्रह्मचर्यम् । तदेव अहिंसा-सत्य-अस्तेय-अपरिग्रहरूपमहाव्रतसर्गमूलमिति। ब्रह्मचर्यं विना महाव्रतादियथावत्पालनाऽसम्भवात् । आत्मनो परब्रह्म-रूपा मुक्तिरपि नाऽस्ति । ब्रह्मा च विश्वस्रष्टेति समस्त-विश्वमूलमिति द्वयोर्ब्रह्मणोरैक्यं वर्त्तते । तथा चारित्रमेव पारमार्थिको ब्रह्मा, अहिंसादिगुणाऽऽधानादिना कर्मक्षय-पूर्वकमुक्तिसर्गमूलत्वात् । अन्यस्तु ब्रह्मा विश्वसर्जक इति भवपरम्परावर्धक इति सर्जनधर्मसाधर्म्यादेव तस्य ब्रह्मत्वं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकृष्टत्वाद् हेय एवेति । एवम्, **तु**=पुनरर्थे । **सम्यक्त्वं**=तत्त्वार्थश्रद्धानात्मक सम्यग्दर्शनम् । **शिवः**=शिवपदवाच्यः । **प्रोक्तं**=प्रतिपादितम् । पुराणादिषु शिवो हि विश्वसंहारको वर्णितः, सम्यक्त्वमपि तु कर्मक्षयोपशमहेतुर्गुणवृद्धिक्रमेण समस्तकर्मक्षयपूर्वकभवविनाशश्चेति तदेव परमार्थतः शिवः इति भावः । तदेवम्, **अर्हन्मूर्त्तिः**=अर्हतीति अर्हन्, तस्य मूर्त्तिः अर्हन्मूर्त्तिः तीर्थङ्करदेवस्य मूर्त्तिरित्यर्थः । **त्रयात्मिका**=त्रये चारित्र-ज्ञान-दर्शनात्मका ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा आत्मा स्वरूपं यस्याः सा त्रयात्मिका तादृशी एव । लोकालोक-प्रकाशक-केवलज्ञानादेरर्हत्येव सत्त्वात् स एवैकमूर्त्तिस्त्रयो भागाः सन्त्येव । तस्मात् तदेतत् सम्यक्कथितमाह--

"एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
त एव च पुनः प्रोक्ता, ज्ञान-चारित्र-दर्शनात् ॥" इति ।

विश्वे कस्याऽपि देवस्य त्र्यात्मकत्वस्य पूर्वोक्तप्रकारेणाऽसम्भवस्य प्रतिपादनात् । तस्माद् जिनो वीतरागदेवोऽर्हन्नेव महादेवः, नाऽन्येति ॥ ३३ ॥

पद्यानुवाद –

जग में सदा सद्ज्ञान ही सत्य विष्णु कहा जाता है ,
तथा संयम सर्वदा ही सत्य ब्रह्माजी कहा है ।
सम्यक्त्व भी सर्वदा ही सत्य शिव कहा जाता है ,
इसलिये अर्हन् मूर्त्ति ही ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप है ॥ ३३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ –

ज्ञानं=सम्यग्ज्ञान-केवलज्ञान । **सदा**=सर्वदा । **विष्णुः** =विष्णु । **प्रोक्तं**=कहा जाता है । **चारित्रं**=संयम-सर्व-सावद्यविरति । **ब्रह्मा**=ब्रह्मा । **उच्यते**=कहा गया है । तु=तथा । **सम्यक्त्वं**=सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन । **शिवः**= शिव-शंकर-महेश्वर-महेश । **प्रोक्तं**=कहा गया है । इसलिये, **अर्हन्मूर्त्तिः**=जिनमूर्त्ति । **त्रयात्मिका**=तीनों-ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर स्वरूप हैं ।

श्लोकार्थ –

सर्वदा **ज्ञान** (सम्यग्ज्ञान, केवलज्ञान) वह **विष्णु** कहा जाता है, **चारित्र** (संयम, सर्व सावद्य विरति) वह **ब्रह्मा** कहा गया है तथा **सम्यक्त्व** (समकित, सम्यग्दर्शन) वह **शिव** (शंकर-महेश्वर-महेश) कहा जाता है। इसलिये, **अर्हन्मूर्त्तिः**=जिनमूर्त्ति (ही) । **त्रयात्मिका**=तीन प्रकार की (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर स्वरूप) कह सकते हैं ।

भावार्थ –

सम्यग्ज्ञान-**केवलज्ञान** सर्वदा ही **विष्णु** कहा जाता है । कारण कि परतीर्थिकों के पुराणों आदि में पालक तथा व्यापक देव को विष्णु कहा गया है । लोकालोक-प्रकाशक पंचमज्ञान-केवलज्ञान कर्मशत्रु का विनाश करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उससे रक्षण करता है और विश्व के निखिल द्रव्यपर्याय-विषयक होने से व्यापक भी है, इसलिये पारमार्थिक स्वरूप से केवलज्ञान ही विष्णु है। **चारित्र** (सर्व सावद्यविरति-संयम) सर्वदा **ब्रह्मा** कहा गया है। कारण कि पुराणों आदि में विश्व के सर्जक को ब्रह्मा कहा गया है। चारित्र भी मुक्तिरूपी सृष्टि का करने वाला मुक्तिप्रद (सिद्धिप्रद) है, इसलिये वास्तविक स्वरूप से चारित्र-संयम ही ब्रह्मा है तथा सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन को सर्वदा शिव कहा गया है। पुराणों आदि में विश्व के संहारक को शिव-शंकर-महेश्वर-महेश कहा गया है। सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन भी आत्मा के साथ अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के क्षयोपशमका हेतु होने से शिव कहा जाता है। कारण कि कर्म का विनाश होने से ही अपने भवभ्रमण का विध्वंस-विनाश होता है। इसलिये सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन ही तात्त्विक रूप से शिव है। इन तीनों गुणों से समलंकृत अर्हन्-तीर्थंकर-जिनेश्वरदेव ही हैं। इसलिये वे ही एकमूर्त्ति हैं, एवं उनके केवलदर्शन, केवलज्ञान और अनंत चारित्र-रूपी तीन ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वररूप भाग हैं ।। ३३ ।।

[३४]

अवतरणिका –

अन्येष्टो महादेवः क्षित्याद्यष्टमूर्त्तिः प्रतिपाद्य ते, सोऽष्टमूर्त्तिः परमार्थतोऽष्टगुणसद्भावादर्हन्नेवेत्याह---

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपद्यम्--

क्षिति-जल-पवन-हुताशन-
यजमाना-ऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याः ।
इत्येतेऽष्टौ भगवति,
वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

अन्वयः –

'भगवति वीतरागे क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमाना-ऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याः, इति एते अष्टौ गुणाः मताः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

भगवति=भग ऐश्वर्यादिः, यदुकथितमाह---

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, धर्मस्य तपसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव, षण्णां भग इतीरणे" ।। [इत्यमरः]

सोऽस्यास्तीति स भगवान् तस्मिन्, ईश्वर इत्यर्थः । **वीतरागे**=वीतोऽपगतो वा निर्गतो राग उपलक्षणत्वाद् द्वेषादयो दोषाः यस्मात् स वीतरागस्तस्मिन् वीतरागे जिनेश्वरदेवे । **क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमानाऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याः**=**क्षितिः** पृथिवी, **जलं** सलिलं, **पवनः** वायु, **हुताशनः** अग्निः, **यजमानः** याजकः, **आकाशः** व्योमः, **सोमः** चन्द्रः, **सूर्यः** रविः चेत्येता आख्या अभिधानानि येषां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणानां ते तादृशः क्षित्यादिनामानः । यदुक्तमाह–"आदेष्टा स्यान्मुखे व्रती, याजको यजमानश्च" इति हैमः । **इति**=पूर्वोक्ता । **एते**=क्षित्यादयः । **अष्टौ**=अष्टसङ्ख्यकाः । **गुणाः**=विशिष्टधर्माः । **मताः**=वर्णिताः । अस्मिन् श्लोके चतुर्थचरणे 'वीतरागे गुणा मताः' इत्यत्र 'गीता वीतरागे सुगुणाः' इति पाठोऽपि दृश्यते । तदपि सम्यग् एव । 'द्रव्यात्मकक्षित्यादिरूपो महादेवः' इति परेष्टः कथितः, तदसङ्गतम् । यदि परेष्टदेवस्य क्षित्यादिरूपत्वं स्यात्, तर्हि स एव महादेवः स्यात् क्षित्यादिर्वा, उभये नास्ति एव, अभेदेऽनेकत्वविरोधात् । एकस्य विभिन्नाऽनेकपदार्थरूपत्वाऽऽसम्भवात् । गुणाऽस्तु विभिन्नाऽपि अनेके एकस्मिन्नपीति गुणाष्टकसद्भावादर्हन्नेवाऽऽष्टकमूर्त्तिरिति । आर्यावृत्तमिति । तद्लक्षणमाह–

"यस्यापादे प्रथमे, द्वादश मात्रा तथा तृतीयेपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदशः सार्या ।।" ।।३४।।

पद्यानुवाद –

पृथ्वी पानी वायु वह्नि यजमान व्योम चन्द्रमा ,
तथा सूर्य ये सभी अष्ट गुण जग में ही उत्तमा ।
विभु वीतरागदेवमहीं ये अष्टगुण माने हैं ,
इसलिये वीतरागदेव सही अष्टगुणरूपी हैं ।। ३४ ।।

शब्दार्थ –

क्षिति=पृथ्वी । **जल**=पानी । **पवन**=वायु । **हुताशन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

=अग्नि । **यजमान**=व्रती । **आकाश**=गगन । **सोम**=चन्द्रमा । तथा **सूर्य**=रवि । **आख्या**=नाम वाले । **इति एते**=ये सभी । **अष्टौ**=आठ । **गुणाः**=गुणों । **भगवति**=भगवान् । **वीतरागे**=वीतराग (देव) में । **मताः**=माने हैं । [**इति एते**=ये सभी । **अष्टौ**=आठ । **सुगुणाः**=उत्तम गुण । **भगवति**=भगवान् । **वीतरागे**=वीतराग में । **गीताः**=वर्णित हैं] ।

श्लोकार्थ –

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्र तथा सूर्य ये आठों गुण वीतराग भगवंत में माने हैं। अर्थात् ये सभी आठ उत्तम गुण भगवान् वीतराग में वर्णित हैं।

भावार्थ –

[पुराणों में महादेव की पृथ्वी प्रमुख आठ मूर्त्तियां प्रतिपादित की हैं। किन्तु एकमूर्त्ति अष्टमूर्त्ति नहीं हो सकती। जैसे पूर्व में एकमूर्त्ति के तीनमूर्त्ति नहीं होने में जो युक्तियाँ कही गयी हैं वे सभी इधर भी लगाने से स्पष्ट हो जायगा।] प्रस्तुत श्लोक में उन आठों गुणों के नाम इस मुजब निम्नलिखित हैं–(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) वायु, (४) अग्नि, (५) यजमान, (६) आकाश, (७) चन्द्र, तथा (८) सूर्य नाम वाले ये सभी आठ उत्तम गुण भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीतराग (देव) में माने गये हैं। इसलिये भगवान् वीतराग देव ही अष्टगुणरूप होने के हेतु अष्टमूर्त्ति हैं ॥ ३४ ॥

[३५]

अवतरणिका –

विभुवीतरागदेवे क्षित्याद्यष्टगुणान् निरूपयन्नाह---

मूलपद्यम् –

क्षितिरित्युच्यते क्षान्ति-र्जलं या च प्रसन्नता।
निःसङ्गता भवेद् वायु-र्हुताशो योग उच्यते ॥

अन्वयः –

'क्षान्तिः क्षितिः इति उच्यते च या प्रसन्नता जलं, निःसङ्गता, वायुः, भवेत्, योगः हुताशः उच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

क्षान्तिः=सामर्थ्यवान् शक्तौ तथापि अपकारिषु अपि क्षमावन्तेशानो सैवाऽर्हत् इति। **क्षितिः**=पृथ्व्याद्यष्टगुणान्वितेशानो सैवाऽर्हत्। **उच्यते**=कथ्यते। **येत्युद्देश्ये, च प्रसन्नता**=साकल्येन सर्वथा कर्ममलाऽभावाद् राग-द्वेषादि-दोषाऽभावात् तथा चाऽऽत्मनो निर्विकल्पत्वाद् निरुपाधित्वाच्च निर्मलता, विशुद्धता स्वच्छता वेत्यर्थः। येति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्शब्दबलात् तदिति प्राप्यते। **जलं**=वारि, सलिलम्, उच्यते इति सम्बध्यते। चोऽन्वाचये। जलं सलिलमपि निर्मलमिति प्रसन्नता विशुद्धता स्वच्छता वा जलतत्त्वमिति। तथा **निःसङ्गता**=निर्लेपता वा वीतरागतेत्यर्थः। **वायुः**=पवनः। **भवेत्**=स्यात्। यथा वायुः अस्निग्धत्वाद् न कुत्रापि सजति, तथैवाऽर्हन्नपि वीतरागत्वाद् निःसङ्ग इति। **योगः**=शुक्लध्यानम्। **हुताशः**=अग्निः, यथाऽग्निः इन्धनादिप्रदाहकस्तथैव योगोऽपि सकलकर्मेन्धनदाहक इति योगोऽग्नितत्त्वं। **उच्यते**=प्रतिपाद्यते। अर्थात् सैवेशानार्हन् हुताश-अनिलस्वरूपोऽग्नितत्त्व वायुतत्त्वादिभिर्युतः॥ ३५॥

पद्यानुवाद –

सहनरूप क्षमा ही क्षिति गुण युत विभु वीतराग हैं,
आत्मा की निर्मलता ही जल गुण युत वीतराग हैं।
निःसंगता ही वायु गुण समलंकृत वीतराग हैं,
तथा योग अग्नि गुण युक्त सच्चे विभु वीतराग हैं॥ ३५॥

शब्दार्थ –

क्षान्तिः=क्षमा। **क्षितिः**=पृथिवी। **इति**=इस शब्द से। **उच्यते**=कही जाती है। **च**=और। **या**=जो। **प्रसन्नता**=निर्मलता, वह **जलं**=जल (कहा जाता है)। **निःसङ्गता**=वीतरागता। **वायुः**=पवन (कहा जाता)। **भवेत्**=है। तथा, **योगः**=शुक्लध्यान, समाधि। **हुताशः**=अग्नि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम का गुण । **उच्यते**=कहा जाता है ।

श्लोकार्थ –

क्षमा क्षिति नाम का गुण कहलाता है, प्रसन्नता (निर्मलता) जल नाम का गुण कहलाता है, निःसङ्गता (वीतरागता) पवन नाम का गुण कहलाता है, तथा योग (शुक्लध्यान, समाधि) अग्नि नाम का गुण कहलाता है ।

भावार्थ –

[विभु वीतराग देव के क्षित्यादि आठ गुणों का स्वरूप बताते हुए कहा है कि–]

(१) क्षिति यानी पृथिवी **'सर्वंसहा'** कही जाती है । विश्व में वह सब कुछ सहन करती है । इसलिये शक्ति-सामर्थ्य रहने पर भी अन्य किसी के अपराध का सहन रूप क्षमा ही क्षिति-पृथिवी नाम का गुण कहा गया है । विभु वीतराग देव में यह क्षिति गुण वास्तविक रूप में सही है ।

(२) जल यानी पानी, वह वास्तविक रूप में निर्मल है तथा दूसरे को भी निर्मल करता है । इसलिये कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर आत्मा की प्रसन्नता यानी निर्मलता ही जल-पानी नाम का गुण है । विभु वीतराग देव में यह जल गुण वास्तविक रूप में सही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) निःसङ्गता यानी वीतरागपन-वीतरागता। विश्व के किसी भी विषय में-पदार्थ में राग नहीं होना, वह निःसङ्गता-वीतरागता ही पवन-वायु नाम का गुण है। वह मिट्टी या पानी के जैसे किसी भी वस्तु-पदार्थ में आसक्त नहीं होता है। विभु वीतराग देव में यही वीतरागता पवन-वायु गुण वास्तविक रूप में सही है।

(४) हुताश-हुताशन यानी अग्नि-वह्नि। वह समस्त वस्तु-पदार्थों को जला देता है, इस तरह योग (शुक्ल-ध्यानादि) भी समस्त कर्मों का विनाश करता है। इसलिये योग अग्नि नाम का गुण कहा गया है। विभु वीतराग देव में यह अग्नि गुण भी वास्तविक रूप में सही है।
॥ ३५ ॥

[३६]

अवतरणिका –

क्षित्याद्यन्तर्गतो यजमानादिगुणान् निरूपयन्नाह---

मूलपद्यम् –

यजमाणो भवेदात्मा, तपोदानदयादिभिः।
अलेपकत्वादाकाश-सङ्काशः सोऽभिधीयते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'आत्मा, तपोदानदयादिभिः, यजमानः, भवेत्। सः अलेपकत्वात् आकाशसङ्काशः अभिधीयते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

आत्मा=चेतनस्वरूपात्मस्वरूपोऽर्हत्। **तपोदानदयादिभिः**=तपश्च दानं च दयादिश्च तपोदानदयादिस्तैस्तपोदानदयादिभिः। **तपः**=उपवास-षष्ठाऽष्टमभक्तादिकम्। **दानं**=दीयतेति दानं दीक्षाग्रहणात्प्राग् वार्षिकदानादिकमित्यर्थः। **दया**=निर्हेतुकनिखिल भूतानुकम्पा, समस्तभूतोद्देशेनाऽहिंसोपदेशात् स्वस्य सर्वसावद्यविरतित्वाच्चेति। आदिपदेन सत्याऽस्तेय--ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहादिः, तैः कृत्वा। **यजमानः**=याजकः। दयादिकमेव यजनं, न तु हिंसादिसाध्यम्। हिंसादिसाध्यं तु दुरिताऽनुबन्धित्वाद् अशुभत्वात् सावद्यं कर्मेति, तत् कुयजनमेवेति भावः। तथा, **सः**=अर्हदात्मा। **अलेपकत्वात्**=लेप्याभावमलेपकत्वम्, कर्ममललेपसाधनाऽऽस्रवरहितत्वात् संवृतत्वात् शुद्धत्वाच्च न लिम्पति विषयेषु यः तस्मात् अलेपकत्वात् कर्मबन्धात्मकलेपाऽविषयत्वादिति। **आकाशसङ्काशः**=गगनोपमः, आकाशोऽपि शून्यत्वान्न लिम्पति। **अभिधीयते**=प्रतिपाद्यते। यथा नभोऽमूर्त्तत्वाद् आलेख्यादिलेपाऽयोग्यस्तथाऽयमपि निर्गुणत्वादिति तस्य निर्लेपताऽऽकाशतत्त्वमिति ॥ ३६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

तपोदानदयादिक थकी होती आत्मा यजमान है,
वह गुण युक्त भी विश्व में सच्चे विभु वीतराग हैं।
कर्ममलरहित आत्मा की निर्लेपता नभतुल्य है,
उस गुण से समलंकृत भी विश्वे विभु वीतराग हैं।। ३६ ।।

शब्दार्थ –

आत्मा=जीव (जिनेश्वर देव की आत्मा)। **तपोदान-दयादिभिः**=तप, दान तथा दया इत्यादि गुणों से। **यजमान**=यजमान यानी व्रती। **भवेत्**=होती है। तथा, **सः**=वह आत्मा। **अलेपकत्वात्**=कहीं भी लिप्त नहीं होने से, अथवा कर्मरूपीमल से लिप्त नहीं होने के कारण। **आकाशसङ्काशः**=आकाश-गगनतुल्य। **अभिधीयते**=कही जाती है।

श्लोकार्थ –

तप, दान और दया आदि द्वारा आत्मा ही यजमान यानी व्रती कही जाती है, तथा वह आत्मा ही कर्म से रहित निर्लेपता होने से आकाश समान कही जाती है।

भावार्थ –

आत्मा यही प्रभु स्वरूप वीतरागत्व से तप, दान, दया अहिंसात्मक युक्त एवं अपरिग्रहादि से यजमान स्वरूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् इन गुणों से युक्त होने पर ही यजमान बन सकता है। व्रतों के पालन करने वाले को ही यजमान कहा जाता है। अहिंसा मूलक यजमान स्वरूप यह आत्मा अर्हत् है। सकल कर्मों के क्षय हो जाने पर यह आत्मा निर्लेप आकाश तुल्य है। निर्लेपता आकाश का गुण है। इसलिये निर्लेप आत्मा ही आकाश तुल्य कही जाती है। यजमान और आकाश तुल्य निर्लेप आत्मा सही रूप में वीतराग परमात्मा ही है ॥ ३६ ॥

[३७]

अवतरणिका –

क्षित्याद्यन्तर्गतो चन्द्र-सूर्यगुणान् निरूपयन्नाह–

मूलपद्यम् –

सौम्यमूर्तिरुचिश्चन्द्रो, वीतरागः समीक्ष्यते।
ज्ञानप्रकाशकत्वेन, स आदित्योऽभिधीयते॥

अन्वयः –

'वीतरागः, सौम्यमूर्त्तिरुचिः, चन्द्रः, समीक्ष्यते, सः, ज्ञानप्रकाशकत्वेन, आदित्यः, अभिधीयते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

वीतरागः—विगतो रागो यस्मात् सः वीतरागः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागादिरहितोऽर्हन् वीतरागो जिनेश्वरः । **सौम्यमूर्त्तिरुचिः**= **सौम्या** प्रिया प्रशान्ता च **मूर्त्तिरुचिः** वपुकान्तिः शरीरप्रभा यस्य स तादृशः सन् । यदुक्तं--"सौम्यं च मधुरं प्रियम्" इति हैमः । **अन्यच्च** "भासा चयैः परिवृतो, ज्योत्स्नाभिरिव चन्द्रमाः । चकोराणामिव दृशां ददासि परमां मुदम्" इति । अत एव, **चन्द्रः**=चन्द्र इव, **समीक्ष्यते**=अवलोकयते । यथा चन्द्रः सौम्यदर्शन सर्वेषां कृते सुधावर्षकः, तथैव वीतरागदेवस्य सौम्यमूर्त्ति रुचिः मूर्त्तेः प्रभा चन्द्रवत् प्रिय-दर्शना । तथा, **सः**=वीतरागः, **ज्ञानप्रकाशकत्वेन**=ज्ञानस्य प्रकाशकत्वं ज्ञानप्रकाशकत्वं तेन ज्ञानप्रकाशकत्वेन, ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानस्य प्रकाशकत्वेन सदुपदेशादिनोद्बोधकत्वेन । **आदित्यः**=सूर्यरिव । **अभिधीयते**=स्तुत्यते । यथा सूर्यो हि तमोविनाशपूर्वकं विश्वं प्रकाशयति तथैव वीतरागदेवोऽपि सद्धर्मदेशनयाऽज्ञानं विनाश्य सम्यग्ज्ञानं प्रकाशयति । यदुक्तं--

"यः परमात्मा परं ज्योतिः, परमः परमेष्ठिनाम् ।
आदित्यवर्णं तमसः, परस्तादामनन्ति यम् ।। १ ।।

[इति वीतरागस्तोत्रे प्रथमप्रकाशे]

तदेवमुक्तप्रकारेण क्षित्याद्यात्मकक्षमाद्यष्टगुणात्मकत्वादर्हन्न-ष्टमूर्त्तिरिति भावः ।। ३७ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

वीतराग देव ही सौम्य मूर्त्ति कान्तिवन्त शोभते,
वह चन्द्र सम ही विश्व में सदा सुन्दर अति दीखते।
ज्ञान प्रकाश हेतु से वह सूर्य सम कहे जाते हैं,
क्षित्याद्यष्टगुण युक्त ये अष्टमूर्त्ति स्वरूपी हैं ।। ३७ ।।

शब्दार्थ –

वीतरागः=वीतराग अर्हन् श्रीजिनेश्वर देव। **सौम्यमूर्त्तिरुचिः**=सौम्यशरीरकान्ति वाले हैं, इसलिये **चन्द्रः**=चन्द्रमा के जैसे। **समीक्ष्यते**=दीखते हैं। तथा, **सः**=वह वीतराग अर्हन् जिनेश्वर देव। **ज्ञानप्रकाशकत्वेन**=ज्ञान के द्वारा प्रकाशकत्व यानी प्रकाशित करने का स्वभाव वाले होने के कारण। **आदित्यः**=सूर्य के समान। **अभिधीयते**=कहे जाते हैं।

श्लोकार्थ –

वीतराग विभु सौम्य मूर्त्ति की कान्तिवाले होने से चन्द्र जैसे दीखते हैं, और ज्ञान के प्रकाश करनेवाले होने से वह ही सूर्य के समान कहलाते हैं।

भावार्थ –

वीतराग अर्हन् जिनेश्वर देव के देह की कान्ति सौम्य है, इसलिये वे चन्द्र के जैसे दीखते हैं। अर्थात् उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर की मधुर आह्लादक कान्ति चन्द्र जैसी होने से चन्द्र नाम का गुण है। तथा अपने ज्ञान (केवलज्ञान) के द्वारा समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं, इसलिये वे ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में प्रकाशमान हैं, अतः वे सूर्य के समान कहे जाते हैं। जैसे सूर्य भी अपनी किरणों के द्वारा विश्व को प्रकाशित करता है, उस से भी अधिक वीतराग विभु सभी प्राणियों को सम्यग्ज्ञानादिक का सदुपदेश देकर उन के अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश करते हैं, और मोक्षमार्ग का प्रकाशन करते हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र की सम्यग् आराधना द्वारा मुक्ति की सच्ची राह बताते हैं। इसलिये वीतराग अर्हन् जिनेश्वर देव का केवलज्ञान के द्वारा समस्त विश्व का प्रकाशन सूर्यनाम का गुण है। यहाँ इस प्रकार क्षिति आदि आठ गुणों के होने से वीतराग जिनेश्वर अष्टमूर्त्ति रूप हैं ॥ ३७ ॥

[३८]

अवतरणिका –

पूर्वोक्तमेवं गुणतो वीतरागोऽर्हन् जिनेश्वरदेवो हि महादेव इति स एव नमस्करणीय इत्याह---

मूलपद्यम् –

पुण्य-पापविनिर्मुक्तो, राग-द्वेषविवर्जितः ।
अर्हंस्तस्य नमस्कारः, कर्त्तव्यः शिवमिच्छता ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'अर्हन्, रागद्वेषविवर्जितः, पुण्यपापविनिर्मुक्तः, शिवम्, इच्छता, तस्य नमस्कारः कर्त्तव्यः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

अर्हन्=वीतरागो जिनेश्वरस्तीर्थङ्करः, सर्वैः सुराऽसुरेन्द्रादिभिः कृतां पूजामर्हतीति स तादृशः । यद्प्रोक्तमाह---

"यस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवोत्तमोत्तमो लोके ।
देवर्षिनरेन्द्रेभ्यः पूज्येभ्योऽप्यन्यसत्त्वानाम् ।।"

रागद्वेषविवर्जितः=रागश्च द्वेषश्च रागद्वेषौ ताभ्यां विवर्जितः रागद्वेषविवर्जितः, रागेणाऽऽसक्त्या द्वेषेणाऽप्रीत्या चोपलक्षणत्वाद् मोहकषायादिभिश्च विवर्जितो रहितः । एतद् विषये यद्कथितमाह—

"न केवलं रागमुक्तं वीतराग ! मनस्तव ।
वपुः स्थितं रक्तमपि क्षीरधारासहोदरम् ।।"

इति । अत एव, **पुण्य-पापविनिर्मुक्तः**=पुण्यं च पापं च पुण्यपापे ताभ्यां विनिर्मुक्तः पुण्यपापविनिर्मुक्तः, पुण्यैः विहितशुभकर्मजन्यैः पापैः निषिद्धाऽशुभकर्मजन्यैश्च विनिर्मुक्तो रहितः । वीतरागत्वात् संवृतत्वात् कर्मबन्धस्याऽसम्भवात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सञ्चितप्रारब्धकर्माणां क्षयाच्चेति । दारादिपरिग्रहशत्रुनि-ग्रहादि सद्भावाद् नत्वन्यो देवो वीतरागः, विश्वे सर्वस्व-विशुद्धत्वात् सर्वोत्तमोऽर्हन्नेवेति। **शिवं**=कल्याणं। **इच्छता**=अभिलषता । **तस्य**=वीतरागस्य निर्मलस्याऽर्हतो देवस्यैव । **नमस्कारः**=प्रणामः । **कर्त्तव्यः**=विधेयः । राग-द्वेषादिमांस्तु स्वयमशिव इति तस्य नमस्कारो न तु शिवाय भवितुमर्हति । तस्मात् कथितमाह--

> "भ्रान्तस्तीर्थानि दृष्टस्त्वं, मयैकस्तेषु तारकः ।
> तत् तवाऽङ्घ्रौ विलग्नोऽस्मि, नाथ ! तारय तारय ।।"

इति भावः ।। ३८ ।।

पद्यानुवाद --

जो पुण्य-पापथकी सदा सर्वदा ही निर्मुक्त है ,
तथा राग-द्वेष से भी सदा सर्वथा वर्जित है ।
ऐसे जिनेश्वर देव को नमस्कार करना योग्य है ,
मोक्षाभिलाषी जीव ने मोक्षदायक वही है ।। ३८ ।।

शब्दार्थ –

अर्हन्=अरिहन्त जिनेश्वर देव--तीर्थंकर परमात्मा । **रागद्वेषविवर्जित**=राग और द्वेष से रहित हैं अर्थात् वीतराग हैं। इसलिये, **पुण्यपापविनिर्मुक्तः**=पुण्य तथा पाप से रहित अर्थात् मुक्त हैं । अतः, **शिवम्** -मोक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याण की। **इच्छता**=इच्छा करने वाले को। **तस्य**= उस वीतराग अरिहन्त जिनेश्वरदेव को ही। **नमस्कारः**= नमस्कार अर्थात् प्रणाम-वन्दन। **कर्त्तव्यः**=करना चाहिये।

श्लोकार्थ –

मोक्ष-कल्याण की अभिलाषा वाले जीव को पुण्य और पाप से मुक्त तथा राग और द्वेष से रहित ऐसे अर्हन् वीतराग श्रीजिनेश्वरदेव को ही नमस्कार-प्रणाम करना योग्य है।

भावार्थ –

अर्हन् तीर्थंकर परमात्मा राग-द्वेष से रहित तथा पुण्य-पाप से मुक्त वीतराग देव हैं। इसलिये मोक्ष-कल्याण चाहने वाले को इन्ही वीतराग जिनेश्वर देव को नमस्कार-प्रणाम करना चाहिये। इनकी ही सेवा-भक्ति करनी चाहिये। अन्य की नहीं ॥ ३८ ॥

[३९]

अवतरणिका –

तदेवं गुणतो ब्रह्माद्यात्मत्वं प्रतिपाद्य शब्दतः तदात्मत्वमाह---

मूलपद्यम् –

अकारेण भवेद् विष्णुः, रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः।
हकारेण हरः प्रोक्त-स्तस्यान्ते परमं पदम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वयः –

'अकारेण विष्णुः भवेत्, रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः, हकारेण हरः प्रोक्तः, तस्य अन्ते परमं पदम्' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

अकारेण='अ' कण्ठोच्चारणध्वनिः, तेन कण्ठ्येन ह्रस्वस्वरेणाऽकाररूपेण 'अर्हँ' इत्याक्षरघटकेन प्रथमवर्णेनेत्यर्थः । **विष्णुः**=विष्णुस्वरूपः । **भवेत्**=स्यात् । 'अर्हँ' इति पदे प्रथमाऽक्षरो 'अ' विष्णुरूपेण स्तुत्यः । "**अच्युतं केशवं**" अच्युतस्य प्रथमाक्षरः 'अ' इति भावः । **अन्यच्च** "अकारेण भवेद् विष्णुः" इति । "अकारो वासुदेवः स्याद्" इति एकाक्षरकोशाच्चेति ज्ञेयम् । एवञ्च "अर्हँ" इति पदं शब्दतो विष्णवात्मकमिति समाहितम् । **रेफे**="अर्हँ" इत्यक्षरघटक-रेफे । **ब्रह्मा**=ब्रह्मवाचको ब्रह्मशब्दः, प्रजापतिवाचको ब्रह्मरित्यर्थः । **व्यवस्थितः**= व्यवस्थया स्थितः, अर्थात् ब्रह्मा वै "अर्हँ" यद्वोक्तन्यायेन रेफो रेफघटित-ब्रह्मपदलक्षक इति रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः । एतेन शब्दतो ब्रह्मणः स्वरूपमर्हन्नेव । तथा, **हकारेण**= "अर्हँ" इतिपदघटकेन महाप्राणेन वर्णेन । **हरः**=महेश्वरः शिवस्वरूपः । **प्रोक्तः**=कथितः, "शिवो वैऽर्हत्" शिवस्वरूपत्वे 'अर्हन्' पदं व्यवस्थितः । ननु "अर्हँ" इत्यक्षरे उपरिस्थितस्याऽनुनासिकस्य किं प्रयोजनमिति चेत् तत्राह---

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्य=“अर्हँ” इति पदेऽकारोत्तररेफोत्तरवर्त्तिहकारस्य। **अन्ते**=पर्यवसाने। **परमं**=सर्वोत्कृष्टत्वात् परमश्रेष्ठं। **पदम्**=स्थानम्, मोक्षस्थानमेवेत्यर्थः। तत उपरि नहि किञ्चित् पदमिति तत् परममेव पदं भवति। तस्याकारश्चाऽर्धचन्द्राकृतिरनुनासिक रेखा सदृशः, बिन्दुश्च तत्स्थसिद्धाऽनुकृतिः। एवं चाऽनुनासिको रेखागवयन्यायेन सिद्धशिलाऽनुकृतिर्वीतरागस्यार्हतो ब्रह्माद्यपेक्षयाऽपि परमोच्चस्थानस्थत्वं ध्वनति। एतादृशपदस्थाश्चेत्यर्हन्नेव वीतरागो जिनेश्वरो महादेव इति। एतेनार्हतः शब्दतः आत्मत्वं समाहितमिति ॥ ३९ ॥

पद्यानुवाद –

अर्हँ महीं आदि अकार विष्णु स्वरूपी कहा है,
तथा रेफरूप वर्ण में ब्रह्माजी को माना है।
हकार रूप वर्ण से तो महेश्वर को ही माना है,
अन्त में अर्धचन्द्रबिन्दु प्रतीक मुक्ति का कहा है ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ –

अकारेण=“अर्हँ” यह अपने आदि में स्थित अकाररूप वर्ण से। **विष्णुः**=विष्णु के स्वरूप। **भवेत्**=है, और। **रेफे**=“अर्हँ” इसके रेफ रूप वर्ण में। **ब्रह्मा**=ब्रह्मा। **व्यवस्थितः**=रहे हुए हैं। तथा, **हकारेण**=“अर्हँ” इस के हकार रूप वर्ण से। **हरः**=महेश्वर। **प्रोक्तः**=

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहे गये हैं । **तस्य**=उस हकाररूप वर्ण के । **अन्ते**=अन्त में, अर्थात् ऊपर के विभाग में रहा हुआ अर्धचन्द्रबिन्दु । **परमं**=सर्वोच्च । **पदम्**=पद अर्थात् सिद्धशिला के आकार का होने से परमपद का प्रतीक (अनुस्वार) है ।

श्लोकार्थ –

"**अर्हं**" (यह) मन्त्र अपने आदि में स्थित अकार रूप वर्ण से विष्णुस्वरूप है, रेफरूप वर्ण में ब्रह्मा रहे हुए हैं, और हकाररूप वर्ण से हर (महेश्वर) कहे गये हैं । उस हकाररूप वर्ण के अन्त में जो अनुस्वार (अर्धचन्द्र-बिन्दु) है वह परमपद अर्थात् मोक्षपद है ।

भावार्थ –

"**अर्हं**" (यह) मन्त्र जैनदर्शन का महान् मंत्र है । इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा परमपद स्वरूप का निर्देश है । अर्हं की आदि में स्थित अकाररूप वर्ण विष्णुस्वरूप है अर्थात् विष्णु का प्रतीक है, अर्हं का रेफरूप वर्ण ब्रह्मा शब्द में रेफ होने से ब्रह्मा का प्रतीक है, अर्हं का हकाररूप वर्ण हर आदि महेश्वरवाचक शब्दों में हकार होने से महेश्वर का प्रतीक है । अर्हं के अन्त में अर्थात् ऊपर स्थित अर्धचन्द्रबिन्दु (अनुस्वार) सिद्धशिला के आकार का होने से परमपद का अर्थात् मुक्ति-मोक्ष का प्रतीक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारांश यह है कि---"अर्हं" मन्त्र वीतराग विभु श्री अरिहन्त-जिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा का वाचक है। इसलिये "अर्हं" शब्द में ब्रह्मा-विष्णु-महेश स्वरूप भी माना गया है। गुणों से जिनेश्वर के ब्रह्मा आदि स्वरूप का प्रतिपादन पहले किया ही है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि को मानने वाले अन्य सभी जीवों को भी यही "अर्हं" शब्द नमस्करणीय, वन्दनीय, पूजनीय, चिन्तनीय, मननीय एवं ध्यान करने योग्य अवश्यमेव है ॥ ३९ ॥

[४०]

अवतरणिका –

अर्हत्पदार्थगौरवं प्रकटयन्नाह---

मूलपद्यम् –

अकार आदिधर्मस्य, मोक्षस्य च प्रदेशकः ।
स्वरूपं परमज्ञानमकारस्तेन प्रोच्यते ॥

अन्वयः –

'अकारः आदिधर्मस्य, च मोक्षस्य प्रदेशकः, स्वरूपं परमज्ञानं, तेन अकारः प्रोच्यते' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

अकारः='अर्हन्' पदस्यादिमाक्षरः प्रथमोऽकाररूपो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णः । **आदिधर्मस्य**=आदिर्मुख्यः, आदौ उपदिष्टत्वाच्चोपचाराद् आदिः प्रथमश्च यो धर्मो दानशीलतपोभावस्वरूपः, तस्य, यद् प्रोक्तमाह--

"दानशीलतपोभाव-भेदाद् धर्मं चतुर्विधम् ।
मन्ये युगपदाख्यातुं चतुर्वक्त्रोऽभवद्भवान् ।।"

इति । अच्युतादिमं 'अ' गुणान्वितं 'अर्हन्' । **मोक्षस्य**=निखिलकर्मक्षयजन्यमुक्तेः । **प्रदेशकः**=प्रकर्षेण आदिशति एतादृशः उपदेशकः प्रतिपादकश्च । मातृकापाठे अकारो हि सर्वादिरिति । तस्माद् सोऽर्हत्पदघटक आदिधर्मस्य मोक्षस्य समस्तशास्त्रादीनां चाऽऽदावुपदिष्टानां लक्षकः । किञ्च, **स्वरूपं**=आत्मनस्तत्त्वभूतं । **परमज्ञानं**=सर्वोत्कृष्टज्ञानं केवलात्मकज्ञानरूपं, विश्वे लोकालोकप्रकाशकस्य केवलज्ञानस्य हि सर्वद्रव्यपर्याया विषया न तु मतिज्ञानादेरिति तदेव परमं ज्ञानम् । तद् निरावरणत्वाद् नित्यत्वाद् विशुद्धत्वाच्च आत्मनः पारमार्थिकं स्वरूपमिति ज्ञेयम् । तदाह-- **अकारः**=इति । **तेन**=आदिधर्मस्य मोक्षस्य च प्रदेशकत्वेन केवलज्ञानस्वरूपत्वेन चाऽर्हतः । **अकारः**=अर्हन्निति पदघटकोऽकारः । **प्रोच्यते**=कीर्त्यते । एतद् वैशिष्ट्यं चाऽर्हत्येव वर्त्तते नाऽन्यत्रेति । तस्माद् स एव नमस्करणीयः, नाऽन्योऽनीदृशः इति ।। ४० ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

अर्हन् का आदि अकार हो आदि धर्म को कहता है ,
तथा आदि मुक्ति को यही आदि अकार दिखाता है ।
आत्मस्वरूप में परम ज्ञान उत्पन्न करता है ,
इसलिये अर्हन् पद का आदिभूत अकार कहा है ।। ४० ।।

शब्दार्थ –

अकारः=‘अर्हन्’ पद के आदि का अकाररूप वर्ण । **आदिधर्मस्य**=आदि धर्म का । **च**=तथा । **मोक्षस्य**=मोक्ष का । **प्रदेशकः**=प्रतिपादन करने वाला है । तथा, **स्वरूपं**= अरिहन्त के स्वरूपभूत । **परमज्ञानं**=सर्वोत्कृष्ट ज्ञान-केवल-ज्ञान आदि ज्ञान है । **तेन**=इसलिये । **अकारः**=अर्हन् पद का आदिभूत अकार । **प्रोच्यते**=कहा जाता है ।

श्लोकार्थ –

अर्हन् पद का अकार (अक्षर) आदि धर्म को कहता है, आदि मोक्ष को दिखलाता है और आत्मस्वरूप में परमज्ञान अर्थात् केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला है । इसलिये यह अर्हन् पद का आदिभूत अकार कहा जाता है ।

भावार्थ –

पूर्व श्लोक में ‘अर्हं’ अर्थात् अर्हन् पद में ‘अ’ विष्णु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'र्' ब्रह्मा तथा 'ह' महेश-शंकर स्वरूप बताया गया है। यही 'अ' अकाररूप वर्णमातृका पाठ में प्रथमाक्षर है तथा अर्हन् पद के भी आदि में है अर्थात् अर्हन् पद का आद्य अक्षर अकार, तीर्थंकर परमात्मा से उपदिष्ट धर्म ही आदि धर्म है तथा वे ही आदि मुक्त एवं आदि केवलज्ञानी हैं। इसलिये ही अर्हन् पद में सर्व प्रथम अकाररूप अक्षर कहा जाता है ॥ ४० ॥

[४१]

अवतरणिका –

अर्हत्पदघटकं रेफं निरूपयन्नाह–

मूलपद्यम् –

रूपिद्रव्यस्वरूपं वा, दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा।
दृष्टं लोकमलोकं वा, रकारस्तेन प्रोच्यते ॥

अन्वयः –

'ज्ञानेन चक्षुषा रूपिद्रव्यस्वरूपं दृष्ट्वा वा लोकं अलोकं वा दृष्टम्, तेन रकारः प्रोच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

ज्ञानेन=मतिश्रुतावध्यात्मकेन। **चक्षुषा**=नयनेन ज्ञान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेत्रेण न तु चर्मनेत्रेण । **रूपिद्रव्यस्वरूपं**=रूपि-मूर्तं यद् द्रव्यं तस्य यत् स्वरूपमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमनन्तधर्मात्मकत्वादनेकान्तात्मकं च तत्त्वम् । **दृष्ट्वा**=ज्ञात्वा, ज्ञाननेत्रेण हि दर्शनं ज्ञानमेवेति ज्ञेयम् । **वा**=तथा । **लोकं**=चतुर्दशरज्जुप्रमाणमवगाढधर्मास्तिकायादिद्रव्योपाधिकाऽऽकाशप्रदेशात्मकमितिलक्षणया तत्स्थं त्रैकालिकसमस्तद्रव्यपर्यायम् । **अलोकं**=लोकाद् बहिर्भूतमाकाशम् । **वा**=इति समुच्चये । **दृष्टं**=ज्ञातम् । अत्र च केवलज्ञानस्यैव सर्वद्रव्यपर्यायपरिच्छेदकत्वादिति ध्येयम् । **तेन**=रूपिद्रव्यरूपदर्शनक्रमेण लोकाऽलोकदर्शनेन हेतुना । **रकारः**=अर्हत्पदघटको रेफः । **प्रोच्यते**=कथ्यते । यो ह्यर्हत् पदे द्वितीयः ज्ञानस्वरूपः तेन रेफाक्षरेण लोकं अलोकं दृष्टम् । तेन हेतुना रेफः सर्वज्ञतां लक्षयति । नाऽन्यो देव एवं गुणविशिष्ट इति यावत् ॥ ४१ ॥

पद्यानुवाद –

ज्ञानरूप नेत्र द्वारा द्रव्यस्वरूप देखा है,
लोक और अलोक को भी ज्ञान चक्षु से देखे हैं।
इसलिये अर्हं पद महीं ज्ञानसूचक ये रेफ है,
रूपि अर्हन् दोनों के जो करता क्रम सूचन है ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ –

ज्ञानेन=ज्ञानरूप । **चक्षुषा**=चक्षु-नेत्र से । **रूपिद्रव्य-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपं=मूर्त्त पुद्‌गलों के अनेकान्तरूप यथार्थ तत्त्व को। **दृष्ट्वा**=देखकर। **वा**=तथा। **लोकं**=लोक और **अलोकं**=अलोक, दोनों को। **दृष्टं**=(केवलज्ञानरूपी नेत्र से) देखे-जाने हैं। **तेन**=इसलिये। **रकारः**=अर्हन् पद में रेफ। **प्रोच्यते**=कहा जाता है।

श्लोकार्थ –

ज्ञान चक्षु द्वारा रूपी द्रव्य का स्वरूप देखा-जाना है, तथा लोक और अलोक भी देखे-जाने हैं। इसलिये अर्हन् पद में रकार (रेफ या र्) कहा जाता है।

भावार्थ –

अरिहन्त वीतराग ऐसे तीर्थंकर परमात्मा ने अपने अन्तिम भव में संसारी अवस्था में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानों से युक्त होने के कारण विश्व के पुद्‌गलों के अनेकान्तरूप यथार्थ तत्त्व को देख-जानकर, [तथा दीक्षा-ग्रहण के दिन चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तप द्वारा घातिकर्मों के क्षय होने से लोकालोक प्रकाशक पंचम केवलज्ञान प्राप्त होने पर उस केवलज्ञान रूपी नेत्र से] लोक यानी चौदह रज्जुप्रमाण लोकाकाश में अवस्थित सभी द्रव्यों तथा उनकी पर्यायों को तथा अलोक यानी लोक से अतिरिक्त अलोकाकाश को देखा-जाना था। इसलिये 'अर्हँ' पद में प्रथम रूपी द्रव्यों के पश्चात् सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थों के क्रमशः ज्ञान का सूचक रकार यानी रेफ या र् कहा जाता है। अर्थात्—रूपिशब्द में भी रेफ वर्ण है और अर्हन्-तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ केवलज्ञानी विभु है। इसलिये दोनों के क्रम का सूचन रेफ के द्वारा किया गया है ॥ ४१ ॥

[४२]

अवतरणिका –

अर्हत्पदघटकं हकारं निरूपयन्नाह--

मूलपद्यम् –

हता रागाश्च द्वेषाश्च, हता मोहपरीषहाः।
हतानि येन कर्माणि, हकारस्तेन प्रोच्यते ॥

अन्वयः –

'येन रागाः च द्वेषाः हताः, च मोहपरीषहाः हताः, कर्माणि हतानि, तेन हकारः प्रोच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

येन=यत् प्रकारेण। **रागाः**=विषयाऽभिलाषाः। **द्वेषाः**=अनिष्टेष्वप्रीतयः। **च द्वयं**=समुच्चये। **हताः**=विनष्टाः, सर्वथा विनाशिता इत्यर्थः। वीतरागो जिनेश्वरदेवो मध्यस्थ इति यावत्। यद् प्रोक्तम्–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सुखे दुःखे भवे मोक्षे, यदौदासीन्यमीशिषे ।
तदा वैराग्यमेवेति, कुत्र नाऽसि विरागवान् ।।"
"यदा मरुन्नरेन्द्र-श्री-स्त्वया नाथोपभुज्यते ।
यत्र तत्र रतिर्नाम, विरक्तत्वं तदाऽपि ते ।।"
"न मोहजन्यां करुणामपीश !
समाधिमाध्यस्थ्ययुगाश्रितोऽसि" इति भावः ।

तथा, **मोहपरीषहाः**=देहधनदारादिषु ममत्वस्याभावः तथा क्षुधादयो द्वाविंशतिविधाः परीषहाः येन हकारस्वरूपेशानाऽर्हतेन । **हताः**=विनष्टाः । मोहस्य त्यागः परीषहस्य सहनं च विनाशस्तयोरिति बोध्यम् । तथा, **कर्माणि**= शुभाऽशुभानि सर्वाणि । **हतानि**=विनष्टानि । यदुक्तमाह–

"अनन्तकालप्रचितमनन्तमपि सर्वथा ।
त्वत्तो नाऽन्यः कर्मकक्षमुन्मूलयति मूलतः ।।"

तेन=एतादृशोत्कृष्टत्वेन । **हकारः**=अर्हत् पदघटको हकाररूपो वर्णः । **प्रोच्यते**=कीर्त्यते । अर्हत् पदघटको हकारोऽर्हतो राग-द्वेष-मोह-परीषहकर्महननं लक्षयति । नाऽन्यो देव ईदृश इति ।। ४२ ।।

पद्यानुवाद –

जिसने सदा विनाश किया निज राग और द्वेष को ,
तथा नष्ट किया मोह को और सहा परीषहों को ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मों का भी नाश किया ऐसे अर्हन् सुदेव हैं,
इसलिये अर्हन् पद महीं कहा ही हकार वर्ण है ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ –

येन = चूंकि । **रागाः** = विषयासक्तियों का । **च** = तथा । **द्वेषाः** = अनिष्ट विषय में अप्रीतियों का । **हताः** = विनाश किये । **च** = तथा । **मोहपरीषहाः** = मोह यानी ममता तथा क्षुधा आदि बाईस परीषह--इन सभी का । **हताः** = विनाश किया है तथा सहन किये हैं । तथा, **कर्माणि** = शुभ तथा अशुभ कर्मों का । **हतानि** = क्षय-विनाश किया है । **तेन** = इसलिये राग-द्वेषादि कर्मों का विनाश करने के कारण । **हकारः** = हकार अर्थात् अर्हन् पद में हकाररूप वर्ण-अक्षर । **प्रोच्यते** = कहा जाता है ।

श्लोकार्थ –

जिसने राग और द्वेष का विनाश किया है, मोह और परीषह का विनाश किया है, तथा (आठों) कर्मों का विनाश किया है, ऐसे अर्हन् देव हैं । इसलिये अर्हन् पद में हकार रूप वर्ण (अक्षर) कहा जाता है ।

भावार्थ –

अर्हन् पद में हकार के स्वरूप की व्याख्या कर रहे हैं । पूर्व के श्लोकों में यह स्पष्ट कर चुके हैं कि--'अ'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'र' 'ह' विष्णु, ब्रह्मा तथा महेश का द्योतक अर्हन् स्वरूप है। यहाँ 'ह' की व्याख्या करते हुए कहा है कि जिन्होंने राग और द्वेष का समूल विनाश कर दिया है, मोह-ममता का भी त्याग किया है तथा क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास) आदि बाईस परीषह इन सभी को भी समभाव से सहन किया है, कर्मों का भी क्षय किया है; ऐसे अर्हन् परमात्मा हैं। इसलिये राग, द्वेष, मोह, परीषह तथा कर्मों का विनाश करने के कारण, हनन का सूचक हकाररूप वर्ण-अक्षर 'अर्हन्' पद में कहा जाता है ।। ४२ ।।

[४३]

अवतरणिका –

अर्हन्नितिपदान्तस्थं नकारं निर्वक्ति--

मूलपद्यम् –

सन्तोषेणाऽभिसम्पूर्णः, प्रातिहार्याष्टकेन च।
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च, नकारस्तेन प्रोच्यते॥

अन्वयः –

'पुण्यं च पापं च ज्ञात्वा, सन्तोषेण अभिसम्पूर्णः, च प्रातिहार्याऽष्टकेन, तेन नकारः प्रोच्यते' इत्यन्वयः।

मनोहरा टीका –

पुण्यं = शुभं कर्म। च = तथा। पापं = अशुभं कर्म।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च=द्वयं समुच्चये । **ज्ञात्वा**=आत्म-ज्ञान-द्वारा विवेकेन परिच्छिद्य, इदं पुण्यमिदं पापमिति विविच्य, अर्थात् पुण्यं ग्राह्यं पापं त्याज्यमिति विचिन्त्येत्यर्थः । **सन्तोषेण**=सम्यग्-तोषः सन्तोषः तेन उपशमेन, आत्मरत्या तृष्णोपरमेणेति । उपशमेनेति यावत् । **अभिसम्पूर्णः**=अभितः सम्यग् पूर्णः सर्वथा सन्तुषायुक्तः, सम्भृतः आत्मरमणात् सर्वथा तुष्ट-मनोवृतिः । तथा, **प्रातिहार्याऽष्टकेन**=प्रातिहार्याणां द्वाः स्थ इव दिव्यसमवसरणस्थेऽर्हति नियतस्थितीनां तथा अशोक-वृक्षादीनां अष्टकत्वेन, उपलक्षणत्वात् सहजाद्यतिशयेन च, अभिसम्पूर्ण इत्यनुषज्यते । यदुक्तम्--

"अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि---
दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं,
सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ।।"

"एतां चमत्कारकरीं,
प्रातिहार्यश्रियं तव ।
चित्रीयन्ते न के दृष्ट्वा,
नाथ ! मिथ्यादृशोऽपि हि ।।" इति ।

तेन=पुण्यपापविवेकसन्तोषप्रातिहार्यप्रमुखातिशयसद्भावेन हेतुना । **नकारः**=अर्हन्पदस्यान्तिमः नकाररूपो वर्णः । **प्रोच्यते**=प्रकीर्त्यंते ।। ४३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद –

अर्हन् जिनेश्वर देव ने पुण्य-पाप को जाना है,
तथा उपशम से युक्त ये सभी प्रकार से पूर्ण हैं।
चैत्यवृक्षादि अष्ट प्रातिहार्यों से भी शोभित हैं,
इसलिये अर्हन् पद महीं नकार वर्ण कहा ही है ।। ४३ ।।

शब्दार्थ –

पुण्यं=पुण्य अर्थात् शुभकर्म। **च**=तथा। **पापं**=पाप अर्थात् अशुभ कर्म, इन दोनों को। **च**=भी। **ज्ञात्वा**=जानकर। **सन्तोषेण**=सन्तोष द्वारा अर्थात् आत्मा की तृप्ति से। **अभिसम्पूर्णः**=सभी प्रकार से भरे हुए अर्थात् आत्मसुख में मग्न। **च**=तथा। **प्रातिहार्या-ऽष्टकेन**=चैत्यवृक्ष आदि आठ प्रातिहार्यों से विराजित हैं। **तेन**=इसलिये। **नकारः**=अर्हन् पद में रहा हुआ नकार-रूप वर्ण कहा जाता है।

श्लोकार्थ –

पुण्य और पाप को जानकर, सन्तोष और आठ प्रातिहार्यों से सम्पूर्ण हुए हैं इसलिये अर्हन् पद में रहा हुआ नकार (न्) कहा जाता है।

भावार्थ –

अर्हन् अर्थात् अरिहन्त श्रीतीर्थंकर परमात्मा पुण्य तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाप को जानकर, सन्तोष अर्थात् उपशम से युक्त हुए और अतिशय के प्रभाव से दिव्य समवसरण में अशोकवृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि एवं छत्र इन आठ प्रातिहार्यों से विराजित हुए। इसलिये अर्हन् पद में रहा हुआ नकार (न्) कहा जाता है। अर्थात्--अर्हन् पद में रहा हुआ नकार श्रीतीर्थंकर परमात्मा के पुण्य और पाप के तत्त्वज्ञान, उपशम तथा अष्ट प्रातिहार्यों का सूचक है ।। ४३ ।।

[४४]

अवतरणिका –

उक्तप्रकारेण अर्हन्नेव शब्दतोऽर्थतो गुणतश्चेत्युपपाद्य स्वस्य ताटस्थ्यं व्यञ्जयन्नुपसंजिहीर्षुः श्रीवीतरागदेवं नमस्करोति---

मूलपद्यम् –

भवबीजाऽङ्कुरजनना,
रागाद्याः क्षयमुपगता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा,
हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

अन्वयः –

'यस्य, भवबीजाङ्कुरजननाः, रागाद्याः, क्षयं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपगताः, ब्रह्मा, विष्णुः, हरः, जिनः वा, तस्मै, नमः' इत्यन्वयः ।

मनोहरा टीका –

यस्य=यादृशस्य देवस्य । **भवबीजाङ्कुरजननाः**= भवस्य बीजं भवबीजं तस्याऽङ्कुरजननाः भवबीजाङ्कुर-जननाः । भवस्य संसारस्य कर्मणः तद् हेतुकजन्ममरणादेश्च बीजाङ्कुरस्य बीजं कारणं तदात्मको योऽङ्कुरो बीज-प्ररोहः तस्य बीजं अङ्कुरजननेन चरितार्थम्, बीजाङ्कुरस्तु पल्लवितः पुष्पितश्च सन् पुनः पुनः बीजं फलतीति भवस्य परम्पराया इति । जन्यत एभिरिति जनना हेतवः, तत् समाना इत्यर्थः । **रागाद्याः**=रागद्वेषमोहकषायादयः । **क्षयं** =विनाशम् । **उपगताः**=प्राप्ताः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-रूप रत्नत्रयाऽऽराधनादिना भवस्य परम्पराहेतवो रागाद्या यस्य सर्वथा विनष्टाः, सः समान इति । **ब्रह्मा**=तन्नामको देवः । **विष्णुः**=तदाख्यो देवः । **हरः**=तन्नामको देवः, अन्यतीर्थिकप्रसिद्धो महादेव इति । **जिनः**=रागाद्यन्तर शत्रून् जयतीति जिनः, वीतरागोऽर्हन् इति । सर्वत्र वाकारोऽनास्थायाम् । न व्यक्तिविशेषे मम आग्रहः, किन्तु यो वीतरागः । **तस्मै**=तादृशाय वीतरागदेवाय । **नमः**= नमस्कारः, अस्तु ममेति शेषः । उक्तप्रकारेण ब्रह्मादीनां वीतरागत्वाऽभावाद् जिन एव वीतराग इति । तस्मै एव नमस्कारः । न तु अन्य एव । यतो गुणाः पूजास्थानमिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव: । "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" इत्युक्त्यनुसारेण स्वस्य ताटस्थ्यं व्यञ्जयन्नुपसंजिहीर्षुः श्रीवीतरागदेवं नमस्करोति ।। ४४ ।।

पद्यानुवाद –

भवरूपी बीजांकुर के उत्पादक रागादि का,
किया विनाशमूल से ही जिसने निजान्तर शत्रु का ।
ऐसे कोई ब्रह्मा हो विष्णु महेश या जिन हो,
उन विभु वीतराग को ही नमस्कार मेरा नित्य हो ।। ४४ ।।

शब्दार्थ –

यस्य=जिसके । **भवबीजाऽङ्कुरजननाः**=संसाररूपी बीज के अंकुर को उत्पन्न करने वाले । **रागाद्याः**=राग-द्वेष आदि । **क्षयं**=विनाश को । **उपगताः**=प्राप्त हो गये हैं अर्थात् नष्ट हो गये हैं । वह नाम से **ब्रह्मा**=ब्रह्मा हो । **वा**=अथवा । **विष्णुः**=विष्णु हो । **वा**=अथवा । **हरः**=महेश-महेश्वर हो । **वा**=या । **जिनः**=जिनेश्वर-तीर्थंकर कोई भी हो । **तस्मै**=उस वीतराग देव को । **नमः**=मेरा प्रणाम-नमस्कार है ।

श्लोकार्थ –

जिसके भव-संसाररूपी बीज के अंकुर को उत्पन्न करने वाले राग-द्वेषादिक नष्ट हो गये हैं, वह नाम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मा, विष्णु, महेश या जिनेश्वर—कोई भी हो, उनको मेरा नमस्कार है ।

भावार्थ –

जिस देव के भव-संसार के बीजांकुर अर्थात् मूलभूत कारण (उत्पन्न करने वाले साधन) रूप कर्म तथा जन्म आदि के हेतुभूत राग-द्वेषादिक विनष्ट हो गये हैं । अर्थात् जो देव वीतराग है वह नाम से (विश्व में) ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर या जिनेश्वर कोई भी हो, उसको मेरा नमस्कार है । उपरोक्त कथन से यह बात सिद्ध होती है कि सारे विश्वभर में जिनेश्वर-तीर्थंकर देव ही वीतराग देव हैं, अन्य कोई भी नहीं । फिर भी इस स्तोत्र के कर्त्ता कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजश्री ने अपनी तटस्थता सूचित की है कि गुण से ही किसी की स्तुति आदि होती है, केवल व्यक्ति की नहीं । विश्वभर में व्यक्ति कोई भी हो, गुणग्राही को व्यक्ति के विषय में पक्षपात नहीं होता है, किन्तु गुण के विषय में अवश्य ही पक्षपात होता है ।। ४४ ।।

इति कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचिते रम्ये **श्रीमहादेवस्तोत्रे** शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-तपोगच्छाधिपति-ब्रह्मतेजोमूर्त्ति-श्रीकदम्बगिरिप्रमुखानेकप्राचीनतीर्थोद्धारक-आचार्यमहाराजाधिराजश्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टालङ्कार-साहित्यसम्राट्-व्याकरणवाचस्पति-शास्त्रविशारद-कविरत्न-परमशासनप्रभावक-आचार्यप्रवरश्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वराणां पट्टधर-धर्मप्रभावक-शास्त्रविशारद-कविदिवाकर-व्याकरणरत्न-आचार्यवर्यश्रीमद्विजयदक्षसूरिवराणां पट्टधर-आचार्यश्रीमद्विजयसुशीलसूरिणा विरचिता **मनोहरा टीका** हिन्दीपद्य-भाषानुवादसहिता समाप्ता ।।

।। श्रीरस्तु ।। 卐 ।। शुभं भवतु ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्तिः

सम्राट् श्रीजिनशासने शुभतपो-गच्छेश्वरः सुश्रियः,
वाग्सिद्धश्च युगप्रधानसदृशः सिद्धान्तपारङ्गतः।
भूपेन्द्रादिप्रबोधको गुरुवरः सद्ब्रह्मचर्याऽञ्चितः,
तीर्थोद्धारधुरन्धरो विजयतां **श्रीनेमिसूरीश्वरः** ॥ १ ॥

तत्पट्टाम्बरभास्करः कविमणिः साहित्यसम्राट् शुभः,
ख्यातः संस्कृतसप्तलक्षललितः-श्लोकाङ्कसाहित्यकृत्।
न्याये व्याकरणे बृहस्पतिरिव व्याख्यानपीयूषवृट्,
पूज्यः शास्त्रविशारदो गुरुवरो **लावण्यसूरीश्वरः** ॥ २ ॥

तत्पट्टाम्बरपुष्पदन्तसदृशश्चारित्रचूडामणिः,
स्याद्यन्तादिविशिष्टग्रन्थरचनाकर्त्ता प्रवक्ता महान्।
रत्नं व्याकरणे रविः कविकुले सच्छीलवान् भद्रकः,
दक्षः शास्त्रविशारदः शुभगुरुः **श्रीदक्षसूरीश्वरः** ॥ ३ ॥

तेषां पट्टधरेण चाऽनुजेन ब्रह्मचारिणा।
शास्त्रविशारदेन च, श्रीमद्-**सुशीलसूरिणा** ॥ ४ ॥

कलिकाले हि सर्वज्ञः, **हेमचन्द्राख्यसूरीशः**।
महादेवस्य सुस्तोत्रं, रचितं येन मोक्षदम् ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजवाहरचन्द्रस्य, 'पटनी' त्यटकस्य **वै** ।
प्राध्यापकस्य विज्ञप्त्या, धर्मश्रद्धालुकस्य च ॥ ६ ॥

सुरम्ये भारते देशे, राजस्थाने हि प्रान्तके ।
जालौरे नगरे ख्याते, स्वर्णगिरि-सुतीर्थके ॥ ७ ॥

तखतगढसंघस्य, युक्तेनाऽऽगत्य भावतः ।
कृत्वा जिनेन्द्रचैत्यानां, तीर्थयात्रा च दर्शनम् ॥ ८ ॥

शून्यवेदाब्धनेत्रे वै, वरे वर्षे हि विक्रमे ।
मार्गशीर्षे च पञ्चम्यां, शुक्ले शुक्रदिने शुभे ॥ ९ ॥

भाषायां देवभाषायां, यस्य टीका **मनोहरा** ।
कृता श्रेयस्करी भूयात्, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्रीमहादेवस्तुत्यष्टकम् ॥

[अनुष्टुप्—वृत्तम्]

जगत्पूज्यं जगन्नाथं, जगद्गुरुं जिनेश्वरम् ।
निरञ्जनं निराकारं, महादेवं नमामि तम् ॥ १ ॥

राग-द्वेषविनिर्मुक्तं, क्रोध-मानविनिर्जितम् ।
माया-लोभभयान्मुक्तं, महादेवं नमामि तम् ॥ २ ॥

सुराऽसुरनरैः सेव्यं, सिद्धं बुद्धं शिवङ्करम् ।
सर्वगुणनिधानं वै, महादेव नमामि तम् ॥ ३ ॥

यस्य मूर्त्तिर्महारम्या, प्रशान्तं दर्शनं शुभम् ।
वदनपूर्णिमाचन्द्रं, महादेवं नमामि तम् ॥ ४ ॥

यस्य नेत्रद्वयं रम्यं, निर्विकारं च निर्मलम् ।
तथाऽष्टमीन्दुभालं वै, महादेवं नमामि तम् ॥ ५ ॥

यस्य करद्विकं श्रेष्ठं, शस्त्रादिरहितं सदा ।
तथा स्त्रीसङ्गशून्याङ्कं, महादेवं नमामि तम् ॥ ६ ॥

चरित्रमुत्तमं यस्य, सर्वभूताऽभयप्रदम् ।
माङ्गल्यं च प्रशस्तं वै, महादेवं नमामि तम् ॥ ७ ॥

अष्टकर्मविनिर्मुक्तं, केवलज्ञानसंयुतम् ।
कामदं मोक्षदं चाऽपि, महादेवं नमामि तम् ॥ ८ ॥

[हरिगीत—वृत्तम्]

तपगच्छनायक-नेमि-लावण्य-दक्षसूरिवराणां,
पट्टधराचार्यसुशीलसूरिणा सुप्रसन्न-मनसा ।
विधिकारकश्रीमनोजकुमारप्रार्थनया रचितं,
महादेवस्तुत्यष्टकमिदं सर्वमङ्गलसिद्धिदम् ॥ ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिहन्तपद की भावना

हे अरिहन्त परमात्मन् !

आप तीन लोक के **नाथ** हो, **विश्ववन्द्य** और **विश्वविभु** हो, विश्व का **कल्याण करने वाले** हो, देव-देवेन्द्रों से **पूजित** हो, दुस्तर संसार-सागर से तारने के लिए **महानिर्यामक** हो, भयंकर भवाटवी से पार करा कर मुक्तिपुरी में पहुँचाने के लिए **महासार्थवाह** हो, सारे जगत् में अहिंसा के परम प्रचारक होने से **महामाहरण** हो. विश्व के पशुप्राय: प्राणियों की रक्षा करने के लिए **महागोप** हो, **स्वयं सम्बुद्ध** हो, **पुरुषोत्तम** हो, **लोकोत्तम** हो, सिंह के समान **निर्भय** हो।

आप उत्तम श्वेतकमल के समान **निर्लेप** हो, गन्धहस्ति के समान **प्रभावशाली** हो, लोक के **हितकारी** हो, लोक में दीपक समान **प्रकाश करने वाले** हो, **अभय देने वाले** हो, श्रद्धारूपी नेत्रों का **दान करने वाले** हो, **सन्मार्ग दिखाने वाले** हो, **शरण देने वाले** हो, **बोधिबीज का लाभ कराने वाले** हो, **धर्म को समझाने वाले** हो, **धर्मदेशना का श्रवण कराने वाले** हो, धर्मरूपी रथ को चलाने में **श्रेष्ठ सारथी** हो, धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले **चक्रवर्त्ती** हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप लोकालोकप्रकाशक **केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक** हो, छद्मस्थपने से रहित हो, स्वयं **जिन बने** हो और अन्य को **जिन बनाने वाले** हो, स्वयं संसार-सागर से **पार हुए** हो और दूसरों को भी संसार-सागर से **पार करने वाले** हो, स्वय **बोधि प्राप्त** हो और अन्य को भी **बोध प्रकटाने वाले** हो, स्वयं **मुक्त बने** हो और दूसरों को भी **मुक्ति दिलाने वाले** हो, **सर्वज्ञ** हो और **सर्वदर्शी** भी हो, **वीतराग** हो, **देवाधिदेव** हो और **तीर्थंकर भगवन्त** भी हो ।

मोक्ष नगर में जाने वाले, वहाँ सादि अनंत स्थिति में सर्वदा रहने वाले और शाश्वत सुख प्राप्त करने वाले आप ही हो । आप श्री ने चतुर्विध श्रमण संघ रूपी तीर्थ की स्थापना की है । समस्त विश्व के जीवों पर आपका असीम उपकार है । जो भवसिन्धु से स्वयं तिरे हैं और जिन्होंने दूसरे को तारने के लिए अनुपम मार्ग का प्रकाशन किया है, ऐसे भवसिन्धु तारक श्री अरिहंतदेव श्रीनवपद में प्रथमपदे पूज्य हैं ।

ऐसे श्री अरिहन्त परमात्मा को हमारा अहर्निश नमस्कार हो ।

[**'श्रीसिद्धचक्र–नवपदस्वरूपदर्शन'**
(लेखक–पूज्याचार्य श्रीमद्विजयसुशीलसूरिजी म०)
ग्रन्थ में से उद्धृत]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धपद की भावना

हे सिद्ध भगवन्त ! आप **अरूपी हैं । निरंजन निराकार हैं ।** आपका प्रभाव अचिन्त्य और अलौकिक हैं । आप चौदह राजलोक के ऊपर आई हुई ईषत्प्राग्भार पृथ्वी-सिद्धशिला पर विराजमान हैं । आपने अक्षय, अविनाशी और अनन्त स्वरूप को प्राप्त किया है । आपने चार घाती और चार अघाती कर्मों का सर्वथा क्षय किया है । आपने अनन्त ज्ञान गुण, अनन्त दर्शन गुण, अनन्त चारित्र गुण, अनन्त वीर्य, अगुरुलघुता, अरूपीपन, अव्याबाध सुख और अक्षयस्थिति इन आठ गुणों को प्राप्त किया है ।

आप कृतकृत्य होने के कारण **'सिद्ध'** हैं । समस्त विश्व को जानने के कारण **'बुद्ध'** हैं । भवसिन्धु के पार होने के कारण **'पारगत'** हैं । सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र के क्रमशः सेवन से मोक्ष पाने के कारण **'परम्परागत'** भी हैं । समस्त कर्मों से रहित होने के कारण **'मुक्त'** हैं । जरादि का अभाव होने से **'अजर'** हैं । आयुष्यकर्म का अभाव होने के कारण **'अमर'** हैं । निखिल क्लेश के संग से मुक्त होने के कारण **'असंग'** हैं ।

ऐसे गुणों के योग से **श्रीसिद्धभगवन्त** कल्याणकामी आत्माओं के लिए एकान्त रूप से आराधने योग्य हैं । भव्यजीवों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को मोक्ष के रागी बनाने वाले, भव्यात्माओं के अन्तःकरण में मोक्षमार्ग के पथिक बनने की वृत्ति को जगाने वाले और सिद्धि की साधना में इसी वृत्ति को तल्लीन-एकतान बनाने के लिए सहायक होने वाले महान् उपकारी सिद्ध-भगवन्त की आराधना द्वारा हम भी अरिहन्त बनकर सिद्ध बनें और सिद्धस्थान में सिद्धभगवन्तों का सदा सर्वदा सान्निध्य प्राप्त करें।

['श्रीसिद्धचक्र-नवपदस्वरूपदर्शन'
(लेखक—पूज्याचार्य श्रीमद्विजयसुशीलसूरिजी म०)
ग्रन्थ में से उद्धृत]

हित-शिक्षा

卐

मेरा मेरा क्या करे, तेरा नहीं संसार।
मेरा मेरा छोड़ दे, हो जावे भव-पार ॥ १ ॥

मैं मैं नित बकरा करे, मरे कसाई हाथ।
रे! तू मैं-मैं क्यों करे? होगा अन्त अनाथ ॥ २ ॥

मैं नहीं मेरा भी नहीं, प्रकटे जो यह भाव।
जग जंजाल रहे न फिर, हो तिरने का दाव ॥ ३ ॥

['श्रीआध्यात्मिक ज्ञान संग्रह से']

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

卐 नव प्रश्न 卐

१. मैं कौन हूँ ?

२. मैं कहाँ से आया हूँ ?

३. अब मैं इधर से कहाँ जाऊँगा ?

४. मैं क्या कर रहा हूँ ?

५. मेरा कर्त्तव्य क्या है ?

६. आत्मविकास के सम्बन्ध में मुझे क्या करना चाहिये ?

७. हे आत्मन् ! संसार के सभी दुःखों और समस्त कर्मों से कब मुक्त बनोगे ?

८. हे आत्मन्! सत्चिदानंदस्वरूप कब प्राप्त करोगे ?

९. हे आत्मन् ! मोक्ष के शाश्वत सुख के भागी कब बनोगे ?

प्रतिदिन प्रातःकाल निद्रा का त्याग कर, इष्ट देवाधि-देव आदि का स्मरण करने के पश्चात् अपनी आत्मा को ये नव प्रश्न अवश्य पूछने चाहिये । □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितोपदेश

- सम्पत्ति में आनन्द न मनाओ,
  वह तो पूर्व पुण्य का ह्रास कर रही है।
- विपत्ति आने पर खेद न मनाओ,
  वह तो पूर्व संचित पापों को खपा रही है।
- वास्तव में, सम्पत्ति कोई सम्पत्ति नहीं,
  प्रभु की स्मृति ही सच्ची सम्पत्ति है।
- विपत्ति कोई विपत्ति नहीं,
  प्रभु की विस्मृति ही विपत्ति है।
- यतना पूर्वक चलो, यतना पूर्वक ठहरो,
  यतना पूर्वक बैठो, यतना पूर्वक सोओ,
  यतना पूर्वक खाओ, यतना पूर्वक बोलो।
  यतना पूर्वक जीवन जीने वाले को
  पाप कर्म का बंध नहीं होता।

['श्रीआध्यात्मिक ज्ञान संग्रह' में से उद्धृत]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❋ मेरी भावना ❋

जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ।। १ ।।

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं ।
निज परके हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ।। २ ।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं ।
परधन वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ।। ३ ।।

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ।। ४ ।।

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ।। ५ ।।

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ।।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं, या मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।। ७ ।।

होकर सुख में मग्न न फूलें, दुःख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मसान भयानक, अटवी से नहीं भय खावें।।
रहे अडोल अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे।। ८ ।।

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावें।। ९ ।।

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत् में, फैल सर्व हित किया करे।। १० ।।

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।।
बन कर सब युगवीर हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करें।। ११ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ. श्री सुशीलसूरिजी जैन ज्ञानमंदिर

सिरोही राज.

नमो नाणस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org